युगों-युगों से अहिंसा पर हिंसा के काले

बादल मंडराते रहे हैं और हिंसा के

घोर अंधकार में अहिंसा का विवेक

लुप्त हुआ तो धर्म आचरण में

कभी सभ्यता और कभी

परंपरा के नाम पर हिंसा

का तांडव नृत्य शुरू हुआ

और उस तांडव को

रोका भगवान महावीर ने। अब उसी

विवेक को जगाने के लिये आचार्य

श्री जिन चन्द्र सूरी जी

महाराज कटिबद्ध

हैं !!

अध्यक्ष :
नरेश चन्द जैन

अहिंसा विवेक

आचार्य श्री जिन चन्द्र सूरी जी

अहिंसा विवेक

आचार्य श्री जिन चन्द्र सूरी जी

अध्यक्ष
श्री नरेश चन्द जैन
कमला पाकेट बुक्स
12 भगतसिह मार्ग, नई दिल्ली
सहयोगी : राजेन्द्र भगत

मूल्य : तीन रुपए

२२ महत्वपूर्ण कृतियाँ

अध्यात्म युगाधिपति : श्री जिनचन्द्र जी सूरी जी महाराज
[आचार्य श्री की जीवनी]

दिव्य जीवन की भव्य झांकियां
[आचार्य श्री के भक्त गणों के संस्मरण]

वीतराग परम्परा के गौरव
[आचार्य श्री के कार्य कलाप]

तपस्या के पांच वर्ष
[दीक्षा से लेकर अब तक का मनोहारी वर्णन]

विश्व और महावीर
[महावीर निर्वाण शताब्दी समारोह पर की गई आचार्य की विदेश यात्रा के संस्मरण]

भगवान महावीर और उनका उपदेश
[आचार्य श्री के सारगर्भित प्रवचन]

चल अकेला महावीर की राह
[आचार्य श्री की ओजस्वी वाणी का चमत्कार]

अहिंसा विवेक
[अहिंसा पर आचार्य श्री मन्थन]

वीतराग गौरव
[आचार्य श्री की सारगर्भित पुस्तक]

आचरण संहिता
[आचार्य श्री की लेखनी का चमत्कार]

भोग नहीं योग

[प्रवचन]

विवेक तरंग

[ललित लेखों का संग्रह]

विनय अनुशीलन और क्षमा शान्ति

[क्षमा-वाणी पर्व पर दिये गये भाषणों का सार]

ग्यारह पावन प्रवचन

[प्रवचन]

विरक्त दिनचर्या

[श्रावक जीवन के लिए महत्वपूर्ण कृति]

२४ तीर्थंकरों का पावन चरित

[एक महत्वपूर्ण पुस्तक]

राष्ट्रीय नैतिक उत्थान और जिनचन्द्र सूरी जी महाराज

[देश की स्थिति पर महाराज श्री के प्रवचन]

Biography of A Pious Young Saint

[महाराज श्री का जीवन-चरित्र]

National Morality and Mahaueer

[आचार्य श्री की लेखनी का चमत्कार]

Glimpses of Ahimsas Victory

[आचार्य श्री की महत्वपूर्ण कृति]

Veetrag the Goal of Life

[आचार्य श्री का चिन्तन]

Proffile of A Spiritual Young Saint

[विदेश में आचार्य श्री के धर्म विहार के संस्मरण]

अहिंसा विवेक

विषय-सूची

१. अहिंसा के गौरव-तीर्थंकर महावीर
२. अहिंसा विवेक की भाव भूमि
३. अहिंसा का अनुगायक-जिन धर्म
४. बलि की भी बलि
५. अहिंसा की जय यात्रा
६. प्रश्नों के घेरे में और अहिंसा
७. नई पीढ़ी और अहिंसा
८. शाकाहार और मांसाहार
९. रात्रि का भोजन
१०. अहिंसा का लक्षण-संयम

कमला पाकेट बुक्स
12 शहीद भगतसिंह मार्ग
नई दिल्ली

समर्पित

योग्य गुरु श्री यतन लाल जी का देवलोक दिनांक ५-८-७६ को वम्बई में हो गया। जैन समाज ने एक प्रतिभावान महान् व्यक्ति खो दिया। जिसकी पूर्ति न तो जैन समाज ही कर सकता है न यति समाज। श्री यतनलाल जी ने यति व जैन समाज को ऊंचा उठाने का काफी प्रयास किया व मानव सेवा के लिये विवेक वर्द्धन सेवा आश्रम के अन्तर्गत पुस्तकालय, वाचनालय, धर्मशाला आदि के साथ एक अस्पताल का भी निर्माण करवाया।

हम समस्त भारतवासी उनके इस आकस्मिक निधन पर हार्दिक सवेदना प्रकट करते हैं और भगवान से प्रार्थना करते हैं कि उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

यह कृति पूज्य योग्य गुरू जी को समर्पित

जिन चन्द्र सूरी

१. अहिंसा विवेक के गौरव : तीर्थंकर महावीर

आज से छब्बीस सौ वर्ष पूर्व भारत की स्थिति अत्यन्त खराब थी, चारों ओर हिंसा, शोषण और अनाचार का साम्राज्य छाया हुआ था। धर्म के नाम पर मनुष्य उसकी विकृतियों का दास बन चुका था। मनुष्यता कराह रही थी, उसकी गरिमा खण्डित हो चुकी थी। इस समय उसके दर्द की भाषा समझने वाले किसी युगपुरुष की अत्यन्त आवश्यकता थी, जो उन्हें अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाये।

जैसे प्राची से सूर्योदय होता है और अन्धकार का साम्राज्य घुटनें टेक देता है, ठीक वैसे ही विशाल नगरी वैशाली के भाग्य खुले। जब इर्द-गिर्द की जनता धर्मान्ध ठेकेदारों के चंगुल में कराह रही थी, तब विशाल वैशाली राज्य एक अनुपम गणतन्त्र की सिंहासन थी। सब सुखी थे, समृद्ध थे, कहीं कोई शोषण नहीं था, सब एक दूसरे पर विश्वास और स्नेह रखते थे। इस गणतन्त्र के नायक थे महाराजा चेटक। चेटक की रूपसी पुत्रियों में से एक का नाम था त्रिशला। त्रिशला का विवाह कुण्डपुर (कुण्डग्राम) के शासक ज्ञातृवंशीय क्षत्रिय राजा सिद्धार्थ से हुआ। त्रिशला स्वभाव से कोमल, वाणी से मृदु और हृदय से उदार थी। वे सबकी प्रिय थी, सब उनके प्रिय थे। इसी कारण उनका नाम 'प्रियकारिणी' भी था।

एक समय जब प्रियकारिणी अपने राजभवन में निद्रालीन

थी, रात्रि के पिछले पहर में उनकी पलकों पर एक सुहावनी स्वप्न-पंक्ति उतर आयी। त्रिशला को [illegible] सपने अपने मन के आकाश पर दिखाई दिये। सवेरे त्रिशला उल्लास पूर्वक राजा सिद्धार्थ के पास पहुंची और सारे स्वप्न कह सुनाये, तब राजा ने क्रमशः बताया—'हाथी, महानता का प्रतीक है, प्रतीक्षित बालक महान् होगा। बैल, धर्म का चिन्ह है, बालक धर्मनिष्ठ होगा। सिंह, पराक्रम का प्रतीक है, वह निश्चय ही पराक्रमी होगा। लक्ष्मी का शुभदर्शन उसके राज्याधिकार का प्रतीक है। मालाएँ, उसकी कान्तिमान सुरभित देह की सूचक हैं। चन्द्र और सूर्य, इस बात के संकेत है कि बालक सहिष्णु, धीर-गंभीर व तेजस्वी होगा। स्वर्ण कलश, उसकी करुणा की पताकाएँ है। मछलियों का युगल, अनन्त उपलब्धियों का सूचक है। जलाशय, संवेदना का इशारा है। समुद्र, उसकी विशालता का परिचायक है। देवों का विमान उसकी कीर्ति के द्योतक है। रत्नों की राशि, उसके गुणों की सूचक है और निर्धूम अग्नि उसके महानतम होने का प्रतीक है। वह मोक्षगामी होगा।

ज्ञातृवंश में एक विभूति के जन्म का भाग्यशाली समाचार पाकर त्रिशला अपार वात्सल्य व उल्लास से भर उठी। नौ मास सात दिन की समाप्ति पर त्रिशला, वैशाली ने एक विश्व बन्धु वैशालिक को जन्म दिया, एक ऐसी विभूति को जिसने विश्व धर्म की स्थापना की, जिसने हिंसा को हराया; असत्य व अन्याय को पराजित किया। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को प्रियकारिणी ने एक अद्वितीय शक्ति को जन्म दिया।

उस समय रात अपने अन्तिम पड़ाव पर थी, ऐसी भव्य वेला में तीर्थङ्कर वर्द्धमान महावीर का जन्म हुआ। उनकी देह स्वर्ण की आभा लिए हुए थी और मुखमण्डल दीप्ति में दमक रहा था।

इसके पश्चात् सौधर्म इन्द्र ने अवधिज्ञान से ये जानकर कि चौबीसवें तीर्थङ्कर का जन्म हुआ है, उसके जन्माभिषेक हेतु कुण्डलपुर पहुंचा। बालक जिन को लेकर सुमेरू पर्वत पर ले चले और वहाँ बाल तीर्थङ्कर का सुखद जन्माभिषेक देव परिवार के सन्निध्य में हुआ।

बालक महावीर के जन्म[1] से ही राजा सिद्धार्थ का बल वैभव बढ़ने लगा, उनकी कीर्ति फैलने लगी, अतः उन्होंने उसका नाम 'वर्द्धमान' रख दिया। वर्द्धमान जन्म से ही विलक्षण प्रतिभा से संम्पन्न थे, विशिष्ट थे, तीर्थङ्कर थे। वे जैसे-जैसे बढ़ते गये उनका पग सांसारिकता से ऊपर उठता गया। वैराग्य व त्याग उनमें प्रकट होने लगा स्वामी महावीर के आत्मशुद्धि की ओर तेजी से पग उठने लगे, उन्हें संसार के वैभव फीके व स्वादहीन से लगने लगे। उन्हें मनुष्य का मनुष्य द्वारा शोषण बुरा लगता, इन सबके लिए उनका मन विद्रोह कर बैठता। वे एक ऐसे समाज की रचना चाहने लगे जहाँ सब सामान हों और जहाँ प्राणीमात्र को जीने का अधिकार प्राप्त हो। उनका निष्काम व निर्लिप्त जीवन सबको प्रेरणा देने वाला था। केशौर्य महावीर के व्यक्तित्व की सतह पर संसार जरूर था, पर तल में वैराग्य की भावना थी।

वर्द्धमान दिशा-शून्य विश्व को स्पष्ट दिशा देना चाहते थे, वे तीर्थङ्करों के धुंधल गये पद्‌चिह्नों को गहराइयाँ देना चाहते थे, उन्हें नया आयाम व नया वैभव देने की प्रबल भावना वर्द्धमान में विद्यमान थी। जन-मानस पर रूढ़ियों की जो राख जम

---

१. जन्म से अभिप्राय दोनों जन्मों से है—गर्भ-आगमन एवं गर्भ निर्गमन।

गई थी, वर्द्धमान अपनी साधना से उसे निर्धूम-अग्नि का रूप देना चाहते थे।

वे जानते थे, स्त्री मुक्ति की राह में सोने की जंजीर है, पुरुष साधना पथ में लौह शृंखला। दोनों एक दूसरे के सन्दर्भ में बन्धन है। मुक्तिकामी को निष्काम होना चाहिए, इसलिए वर्द्धमान में अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य की भावना ने अब विराट् भाव ग्रहण करना आरम्भ कर दिया था।

इधर राजा सिद्धार्थ व रानी त्रिशला ने कलिंग-जनपद के शासक जितशत्रु की कन्या यशोदा को देख उसका विवाह वर्द्धमान से लगभग निश्चित कर लिया। वर्द्धमान इन सब बातों से अनभिज्ञ थे। उनका सन्दर्भ सर्वथा भिन्न था। विवाह का समाचार उन्हें विषम लगा। हर्षध्वनियों में शोकगीत की तरह वह उनके मन पर उतरा। वर्द्धमान सोचने लगे—"माता-पिता की आज्ञा माननी चाहिए किन्तु मैं अध्यात्मिक पथ का यात्री हूँ। मुझे संयम का रास्ता चाहिए। पिता का हृदय ममता का अतुल समुद्र है, माँ की वात्सल्यता अपार है किन्तु यह सब मोह है। मोह और मोक्ष दो परस्पर विरोधी ध्रुव हैं, इनमें से किसी एक को ही चुनना होगा, मोह बन्धन है। त्याग मुक्ति। वासना दासता है। साधना के लिए उन्मुक्त वातावरण चाहिये। कुण्ठा में साधना कैसी? यह वैभव सब क्षणजीवी है, मेंह की तरह क्षणिक, पानी के बुलबुले की भाँति भंगुर।" पता नहीं कब वे पिता सिद्धार्थ के निकट जा पहुँचे और कहने लगे—"पिताजी मैं आपका पुत्र हूँ, किन्तु आप ही कहें, यहाँ कौन किसका है? सारा संसार अन्याय और अनीति की राह पर चल रहा है, क्या मैं भी इस राह पर चलने लगूं? मुझे आज्ञा दीजिए पिताजी! कि मैं इस विषम स्थिति से जूझ सकूं और गहन अन्धकार के बीच से किसी अदृप्त

आलोक को खोज सकूं। 'हम जीयें और सबको सुख से जीने दें' इस सूत्र को लोक जीवन में उतारने के लिए मुझे संसार से मोह-मुक्त रहने की अनुमति दीजिये।"

महाराजा सिद्धार्थ ने जब वर्द्धमान के विचार सुने तो उनका मस्तक गौरव से ऊँचा उठ गया। उन्हें लगा, उनका पितृत्व धन्य हुआ है। सत्य मोह की कुहा में धुंधला हो जाता है। परिणामतः माता-पिता ने वर्द्धमान का विवाह यशोदा से कर दिया।

राजा सिद्धार्थ के यहाँ वैभव की कोई कमी नहीं थी। किन्तु वर्द्धमान युग से आगे की विभूति थे। उनका मन भवसागर के उस तट पर चरम सत्य की खोज कर रहा था।

वर्द्धमान 'चन्द्रप्रभा' पालकी पर सवार हो तपोवन के लिए चल दिए। मानव मंगल के ये क्षण कितने भाग्यशाली थे!

एकान्त वन प्रदेश में वर्द्धमान महावीर की पालकी उतारी गयी। जयघोषों से सारा आकाश मण्डल गूंज उठा। वर्द्धमान महावीर बड़े प्रसन्न भाव से पालकी से उतरे। सम्मुख एक स्वच्छ शिलाखण्ड, जिस पर स्वास्तिक अंकित था, उनकी प्रतीक्षा कर रहा था।

वर्द्धमान महावीर स्वास्तिक पर आसीन हुए और पलक मारते उन्होंने इस नश्वर संसार से अपना नाता तोड़ दिया, कृत्रिम और औपचारिकताओं से मुक्त एक नयी आभा का उदय हुआ। पाँच मुट्ठियों में अपने राजसी, सुकोमल, स्निग्ध केश उतार दिए। शरीर के मोह पर पूर्ण विराम लगा, प्रभु ने आत्मलोचन और शोधन का मार्ग अपनाया। 'सिद्ध को नमस्कार' की अनुगूंज के साथ उनकी आध्यात्मिक यात्रा प्रारम्भ हुई। पद्मासन की मुद्रा में वे आत्मा की अनन्त गहराइयों में निमग्न हो गये।

धीरे-धीरे व्यर्थता घटती जा रही थी सार्थकता उभर रही थी। भगवान महावीर का जीवन एक तपोभूमि वन गया। चारों ओर एक प्रभामण्डल तीर्थङ्करत्व के उदय का नाद कर रहा था। निराकुल साधना उनकी उपलब्धि थी। उनकी तपस्या के आगे सब नतमस्तक थे। भगवान महावीर की तपश्चर्या अनवरत थी, अविचल थी, अखण्ड थी।

वर्द्धमान महावीर ग्राम-ग्राम, नगर-नगर घूम रहे थे। वन तपोवन बने हुए थे। आत्मदर्शन के साथ, देश-दर्शन, जीवन-दर्शन के साथ लोकदर्शन उनकी चर्या का अंग बन गया था। वैशाली ही नहीं विश्व की अन्तरात्मा का साक्षात्कार करते वे विचरण कर रहे थे। उनके ज्ञान के धूप से चेतना की फसलें पकतीं और लोग आत्मकल्याण के धनधान्य से समृद्ध बनते।

कठोर तप, आत्मानुसंधान, आत्मपरिष्कार, आत्मोदय ही उनके देश-देशान्तर में पर्यटन का प्रमुख प्रयोजन था। वर्द्धमान महावीर कैवल्यपद की ओर अनवरत बढ़ रहे थे। उनकी साधना में एक दिव्य शक्ति करवट लेने लगी थी। चारों ओर स्वर्ण-दीप्ति फैली हुई थी। क्षणभंगुर में शाश्वतता और अमरत्व अंगड़ाई ले रहे थे। चरमसिद्धि के लिए वर्द्धमान महावीर में एक चिन्मय रूप जाग रहा था।

आत्मशुद्धि के अन्तिम चरण में विहार करते हुए वर्द्धमान महावीर विहार प्रान्त पहुंचे। मोक्ष-भवन की सीढ़ियां उनके पदार्पण से पवित्र हो रही थी। बारहवीं मंजिल पर पांव रखते-रखते चरित्र मोहनीय प्रकृतियां पराजित होने लगीं। आत्मा विशुद्ध बनकर अग्रसर होने लगीं। उन पर से कर्मावरण शनैःशनैः उतरने लगे। तेरहवीं मंजिल पर परिणामों की शुक्लता

और घनी हुई और बारह वर्ष पाँच माह पन्द्रह दिन की कठिन तपश्चर्या के बाद वर्द्धमान महावीर ने चार घातिया कर्मों का क्षय कर लिया। अब वे पूर्ण अर्हन्त थे। यह शुभ तिथि वैशाख शुक्ल दशमी थी। तीसरे पहर का प्रारम्भ था। वर्द्धमान महावीर का आत्म-सूर्य उदय की ओर और सूर्य अस्ताचल की ओर पाँव उठाये था। अर्हन्त महावीर अपनी इस जीवन्मुक्त अवस्था में ऋजुकूला के तट-बन्ध पर निर्बन्ध, सघन, प्रखर प्रभा-पुन्ज की भांति उपस्थित थे।

अर्हन्तत्व के पार्श्व में तीर्थंकरत्व भी प्रकट हुआ। सौधर्मेन्द्र को जब यह शुभसूचना मिली तो उसने तीर्थङ्कर महावीर का कल्याणकारी उपदेश सुनने के लिए ऋजुकूला के तट पर एक विशाल भव्य सभामण्डप बनवाया। देखते-देखते ऋजुकूला का तट तीर्थङ्कर वर्द्धमान महावीर की दिव्यध्वनि का परम तीर्थ बन गया। तीर्थङ्कर का उपदेश सुनने के लिए जन समूह उमड़ पड़ा। असंख्य श्रोता प्रभु की ओर अपलक थे। उनके मनः प्राण उस अमृत की प्रतीक्षा कर रहे थे जिसे यह पृथ्वी तेइस बार पी चुकी थी। तीर्थङ्कर महावीर की सौम्य मुख-मुद्रा सबको स्पष्ट दिखाई दे रही थी उनकी पार्श्वभूमियों पर स्फुटिक-सी शुभ्रता फैली थी। तीर्थङ्कर की मुखाभा ही उनकी दिव्य भाषा प्रतीत हो रही थी। सभी श्रोता उनके प्रवचन के उद्घोषण की प्रतीक्षा कर रहे थे।

वे सोच रहे थे कि तीर्थङ्कर वर्द्धमान महावीर ने अपने तपस्या काल में पूर्ण मौन धारण किया हुआ था, उन्होंने कोई देशना नहीं दी, अब वे पूर्ववर्ती तीर्थङ्करों की भांति अवश्य उपदेश देंगे, सब के हितों के लिए उनकी दिव्यध्वनि का लाभ हम सबको अवश्य मिलेगा। प्रखरध्वनि मुखरित हुई। किन्तु उस सभामण्डप में कोई सच्चा जिज्ञासु और विशुद्ध निष्ठावान ग्राहक नहीं था।

सच्चे जिज्ञासु और निष्ठावान-विशुद्धग्राहक के अभाव में ज्ञान कैसा ? सही जिज्ञासा के सन्दर्भ में ही तो ज्ञान की गरिमा और सार्थकता है। विहार करते-करते तीर्थङ्कर वर्द्धमान महावीर राजगृही के पास विपुलाचल पर आये, यहाँ भी इन्द्र की ओर से एक अलौकिक सभामण्डप (समवशरण) की रचना की गई।

इन्द्रभूति गौतम तीर्थङ्कर वर्द्धमान महावीर के प्रथम गणधर हुए जो उनकी दिव्य वाणी को ग्रहण करने की सच्ची सामर्थ्य रखते थे। किन्तु दुविधा यह थी कि वह प्रखर प्रतिभा का धनी तो है, पर तीर्थङ्कर महावीर पर उसकी श्रद्धा नहीं है। वह अतत्वदर्शी है। उसका मन अज्ञान से लिप्त है। प्रतिस्पर्द्धा और शास्त्रार्थ में उसे आनन्द आता है। परन्तु उसे यदि किसी तरह तीर्थङ्कर वर्द्धमान महावीर के समवशरण में लाया जा सके तो उसका कायाकल्प हो सकता है।

इन्द्रभूति इन्द्र नहीं था, किन्तु उसका अपना व्यक्तित्व था। वह वेद-वेदांगों का अपूर्वपाठी ब्राह्मण था। उसके मार्गदर्शन में पांच सौ उत्तम शिष्य अनुसंधान में लगे हुए थे। ज्ञान-चङ्क्रमण के इर्द-गिर्द शिष्यवर्ग बैठा था और क्रमशः अपनी जिज्ञासाओं का समाधान कर रहा था।

इन्द्रभूति गौतम तीर्थङ्कर वर्द्धमान महावीर के समवशरण की ओर चल पड़े।

सभामण्डप का वैभव उल्लास की उमंगों से लहरा रहा था, ऐसे निर्मल वातावरण में इन्द्रभूति गौतम ने तीर्थङ्कर वर्द्धमान महावीर के समवशरण में प्रवेश किया। मान स्तम्भ देखते ही उनके मन का सारा मैल धुल गया। स्तम्भ देखकर इन्द्रभूति स्तम्भित रह गया, उसका सारा अहंकार ओले-सा गल गया।

मान-स्तम्भ उसके जीवन समुद्र का प्रकाश स्तम्भ बन गया। सूरज की किरणें जैसे ओस की बूंदों को सोख लेती है ज्ञान की आलोक रश्मियों ने गौतम के क्रोध को गला दिया। सभामण्डप में विद्यमान तीर्थङ्कर वर्द्धमान महावीर की मंगल मुद्रा को वह एकटक देख रहा था, उसका ज्ञान-मद चूर हो गया। उसका हृदय श्रद्धा से जगमगा उठा। आया था शास्त्रार्थ करने किन्तु शास्त्र के सभी शस्त्र ठण्डे पड़ गये। सच है, तन से पहिले जिनका मन तपस्वी बनता है, वे ही सच्चे तपस्वी है इन्द्रभूति ने शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। इधर गौतम के क्रोध के ताले टूटे, उधर मेघ-गर्जन जैसी दिव्य ध्वनि श्रोताओं के मन-धरती को सींचने लगी। प्रतीक्षा सुफल हुई। सच्ची पात्रता के आगे ज्ञान का अखूट खजाना खुल गया।

तीर्थकर की वाणी ने धर्म संघ का धरातर प्राप्त किया। उस धर्मसंघ ने, जिसमें संसार के समस्त छोटे-बड़े, गरीब-अमीर, राजा रंक और ब्राह्मण-शूद्र को समान अधिकार था।

तीर्थङ्कर महावीर के उपदेश सरल थे, आडम्बर और औपचारिकताओं से कहीं दूर। वे जनता की भाषा में जनहित के लिए होते थे—सरल, सुबोध और सुलभ। उनके उपदेशों में तत्व-दर्शन तो था ही, सृष्टि रचना और सामाजिक तथा वैयक्तिक शंकाओं पर भी प्रकाश डाला गया था। तत्कालीन धर्म, जीवन और जगत की जिन गूढ़ताओं का समाधान नहीं ढूंढ पाये थे, तीर्थङ्कर महावीर की दिव्य वाणी ने उन्हें सापेक्षता के पटल पर स्पष्ट किया। वहाँ न खण्डन था, न मण्डन वरन् उनकी वाणी की सत्य तक सीधी पहुंची थी। सच्ची रुचि, सच्ची पहिचान और सच्चा आचरण, यही भगवान महावीर के उपदेशों का सार था। अहिंसा, सत्य,

अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य को बड़े सीदे-सादे ढंग से समकालीन संदर्भों में प्रस्तुत किया गया था।

कुछ समय बाद भगवान महावीर राजगृही से अन्यत्र विहार कर गये। वे जहाँ भी ठहरते वहाँ करुणा और मैत्री की भैरवी बज उठती, लोकमानस उनके अभिनन्दन के लिए पलकें बिछा देता। विश्व को अनुभव हुआ कि इतने उपकारक क्षण उनके जीवन में पहिले कभी नहीं आये। भारत की अन्तरात्मा का कलुष धुल गया, इतिहास का स्वर्ण युग लौट आया। उज्ज्वलता की कलम से अहिंसा और सत्य के पृष्ठों पर भारत का इतिहास लिखने का सूत्रपात हुआ। जीवन की भाषा ही बदल गयी। अब तक लोग हिंसा, असत्य, परिग्रह, व्यभिचार, वैर, प्रतिरोध की लिपि में लिख रहे थे किन्तु भगवान महावीर ने उन्हें एक नयी रचनात्मक लिपि दी। जिसके प्रतीकाक्षर थे—अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, समत्व मैत्री और परस्पर विश्वास। दिव्यध्वनि में लोकहृदय को एक अपूर्व दिव्यता प्रदान की और उसके ज्ञान-नेत्र खोल दिये। भगवान महावीर लोक भाषा में हितकारी देशना देते सम्पूर्ण भारत का विहार कर रहे थे। उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम चारों दिशाएँ उनकी देशना के आलोक में प्रकाशित हो देदीप्यमान हो रही थी।

भारत की मानसिक और सांस्कृतिक पंगुता, लगभग समाप्त थी। भगवान महावीर के उपदेश ने राष्ट्रीय एकता को परिष्कृत व दृढ़ किया। विश्वबन्धुत्व और विश्वमैत्री की भावनाओं का प्रसार किया। उनका उपदेश प्राणिमात्र के लिए कल्याणकारी था। वास्तव में तीर्थङ्कर भगवान महावीर के समवशरण ने सारे देश में नये प्राण फूंक दिये और लोकचिन्तन का जड़मूल से कायाकल्प कर दिया।

निरन्तर उनतीस वर्ष, तीन मास और चौवीस दिनों तक तीर्थङ्कर वर्द्धमान महावीर मुनियों, आर्यिकाओं, श्रावकों, श्राविकाओं के साथ विहार करते रहे। अपने विहार काल में उन्होंने जैन धर्म की मूल मान्यताओं को लोकभाषा के रूप में समझाया। उन्होंने अनेकान्तवाद के माध्यम से जनगणमन में ज्ञान का, स्नेह का, परस्पर विश्वास का, साधना का प्रकाश फैला दिया। वे जहां भी गये जागृति की एक लहर सी दौड़ गयी, धर्म का एक युक्तिसंगत रूप लोगों के समझ में आने लगा।

अन्त में तीर्थङ्कर भगवान महावीर पावानगर में ठहर गये, उन्होंने विहार से उपराम ले लिया। पावा में उन्होंने योगनिरोधपूर्वक, स्वास्ति की उद्यावस्था में, कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि के अन्तिम प्रहर में निर्वाण प्राप्त किया।

चौवीसवीं कड़ी उठ गयी, परन्तु उससे ज्योतियों ने जन्म ले लिया। जैन धर्म के प्रतिपादनों का वह सर्वोच्च शिखर था। उस समय पावा की शोभा देखते ही बनती थी। ६ लिच्छवी, ६ मल्ल और १८ काशी-कोशल गणराजे तीर्थङ्कर भगवान महावीर के परिनिर्वाण के समय उपस्थित थे।

---

२. विवेक की भाव भूमि

इस जगत में पशु-पक्षी, जीव-जन्तु और मनुष्य आदि सभी चराचर प्राणी अपने जीवन के लिए एक दूसरे पर आश्रित रहते हैं। वे अपनी-अपनी खुद की सत्ता को कायम रखते हुए एक दूसरे पर उपकार करते हैं और इस सम्बन्ध पर ही उन सबका आस्तित्व और विकास निर्भर करता है। यहां तक कि प्रकृति और जड़ पदार्थ भी इससे अछूते नहीं रहे हैं। यही वह भावना है और यही वह व्यवहार है, जो अहिंसा कहलाता है। अपने मन वाणी व शरीर के द्वारा जानबूझकर अथवा असावधानी से भी, किसी भी प्राणी को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुंचाना और इसी के अनुरूप अपने नित्य कर्म को साव-धानी पूर्वक करना ही "अहिंसा" है।

आज से छब्बीस सौ वर्ष पूर्व भगवान महावीर द्वारा स्वयं इसकी व्यावहारिकता का व्यापक प्रयोग—परीक्षण हुआ ही था एवं त्रस्त व पीड़ित मानव जाति को ही नहीं, पशु-पक्षियों तक को, निरापद जीने का अधिकार मिला था। उसके बाद भी बरा-बर उसका प्रयोग हुआ और हो रहा है। ईसा व हजरत मोहम्मद ने भी हिंसक जातियों को अहिंसा का महत्व समझाकर उन्हें मिल कर रहने व सुखमय जीवन व्यतीत करने का मार्ग बताया था। इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध में महात्मा गांधी ने बदनाम राजनैतिक क्षेत्र तक में अहिंसा का अद्भुत और व्यापक प्रयोग करके देश को नैतिक बल प्रदान किया। कई लोग फिर भी अहिंसा को

'अव्यवहारिक व कायरों का धर्म' की संज्ञा दे डालते है। उनका कहना है कि जीवन में हिंसा के बिना काम चल ही नहीं सकता। कुछ लोग तर्क देते हैं कि डाक्टर बगैर हिंसा किये कोई बन ही नहीं सकता क्योंकि जानवरों की चीड़फाड़ बगैर डाक्टरी सीखी ही नहीं जा सकती। वास्तव में ये बातें सच्चे ज्ञान के प्रभाव से शून्य प्रतीत होती है। वे भावुकता में बहकर मोटे तौर पर उस हर काम को हिंसा समझ बैठते हैं, जिसमें किसी जीव की हत्या हो जाती है। हिंसा-अहिंसा की इस गुत्थी को जैन-आचार्यो ने बड़े ही अच्छे ढंग से सुलझाया है।

बाहर से प्राणी मरे या जिये अयत्नचारी प्रमत्त को अन्दर में हिंसा का दोष निश्चित है। पर जो परहित में प्रयत्नशील है, उसको बाहर से प्राणी की हत्या-मात्र से वह कर्मबन्ध नहीं है। यानि वह हिंसा नहीं है। हमारे भाव हिंसामय होने पर भी हमें हिंसा का दोषी होना पड़ेगा। यदि हमारे भावों में परहित की कामना है तो जीव के मर जाने पर भी हम हिंसा के दोषी नहीं। तभी तो जैन मुनियों का कहना है कि अगर डाक्टर से किसी प्राणी की उसे बचाने के भाव से चीड़फाड़ करते हुए यदि मृत्यु हो जाती है तो भी उसे हिंसा का दोष नहीं लगता। कोई शिक्षार्थी इस भावना के साथ ज्ञान की खोज में निकलता है कि आगे चलकर वह उससे हजारों लाखों की पीड़ा हरे और उन्हें मौत के मुंह से भी बचा ले। अगर उससे इस खोज में कुछ जीव मर भी जायें तो भी उसे हिंसा का दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

इसके विपरीत हत्या तो दूर रही, यदि हम स्वार्थवश या दुर्भावनापूर्ण अपनी निर्धारित आवश्यकता से अधिक सम्पदा या,

खाद्य-सामग्री एकत्र कर अथवा कम नाप-तौल कर औरों के लिए अभाव पैदा कर देते हैं या उनका जीवन कष्टमय बना देते हैं, तब भी हम हिंसा के दोषी हो जाते हैं। भले ही उस काम से किसी की मृत्यु न हो। दवाओं, मसालों अन्य खाद्य पदार्थों में मिलावट करना भी हिंसा है, पाप है। ऐसे कुविचार आने से ही हम हिंसा के दोषी माने जायेंगे। अहिंसा को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जाता है—

(१) भाव हिंसा
(२) द्रव्य हिंसा

अपने मन में किसी को किसी भी प्रकार से व किसी भी प्रकार की व्यथा या कष्ट देने का विचार आना—भाव हिंसा है।

अपनी वाणी व कार्य से, जानबूझकर तथा असावधानी से भी स्वयं को अथवा अन्य किसी व्यक्ति को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किसी भी प्रकार की तकलीफ व कष्ट पहुंचाना—द्रव्य हिंसा है।

इन दोनों में भाव हिंसा ही प्रधान है। अपने मन में किसी भी व्यक्ति के प्रति किसी भी प्रकार की दुर्भावना आने मात्र से ही हम अपने शुद्ध भावों को नष्ट कर लेते है और यही अपने शुद्ध भावों की नष्टता ही हिंसा है। हमारे मन की दुर्भावना कार्यान्वित हो या न हो और उससे किसी प्राणी को कष्ट पहुंचे या न पहुंचे, परन्तु इन दुर्भावनाओं के आने मात्र से ही हम हिंसा के दोषी अवश्य हो जाते हैं। इसलिए सच्चे अहिंसक बनने के लिए ये जरूरी है कि हमारे मन में कोई दुर्भावना नहीं आनी चाहिए।

भगवान महावीर ने हिंसा चार प्रकार की बतलाई है—

(१) संकल्पी

(२) विरोधी
(३) आरंम्भी
(४) उद्योगी

जो हिंसा जान-बूझकर, संकल्प करके, योजना वना कर की जाती है, वह संकल्पी हिंसा कहलाती है। जैसे—मांसाहार के लिए पशुओं, पक्षियों, मछलियों आदि जीवों का स्वयं वध करना अथवा इनका मांस खरीदकर खाना, धर्म के नाम पर तथा अन्य किसी विशेष प्रयोजन से देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए पशुओं की वलि देना, अपने मनोरंजन के लिए पशु-पक्षियों और मनुष्यों को आपस में लड़ाना, शिकार खेलना, क्रोध से या वदला लेने के लिए किसी को मानसिक व शारीरिक कष्ट पहुँचाना, किसी के धन, संतान व स्त्री आदि का अपहरण करना, कटुवचन वोलना, मांस, रक्त, चमड़ा, हड्डी आदि प्राप्त करने व औषधि वनाने के लिए किसी भी प्राणी को शारीरिक कष्ट पहुँचाना या उसका वध करना, इस प्रकार के समस्त कार्य संकल्पी हिंसा के अन्तर्गत आते हैं। अतः संकल्पी हिंसा को इस प्रकार अधिक स्पष्ट किया जा सकता है कि अपने मन में स्वयं किसी जीव की हिंसा करने के भाव आने पर, वह हिंसक है। अपने मन में यह भाव आने पर कि किसी व्यक्ति से उस जीव की हिंसा करने के लिए कहना। अपने मन में यह भाव आने पर कि कोई व्यक्ति आप ही इस जीव की हिंसा कर दे तो वहुत अच्छा है। अपने मुँह से कहना कि इस जीव की हिंसा करूँगा। किसी अन्य व्यक्ति को कहना कि इस जीव की हिंसा कर दो। कोई व्यक्ति किसी जीव की हिंसा करने को कह रहा हो तो उसको अपने वचनों द्वारा और भी प्रोत्साहित करना। स्वयं जीव की हिंसा करना। कोई अन्य व्यक्ति जीव की हिंसा कर रहा हो तो उसका अनुमो-

दन करना। इस प्रकार कोई भी कार्य वह अच्छा हो या बुरा उपरोक्त नौ प्रकार से किया जाता है। इन नौ में से किसी एक प्रकार से भी कार्य करने पर हम उस कार्य के कर्त्ता होने के उत्तरदायित्व तथा उसके अच्छे व बुरे फल से नही बच सकते।

किसी आक्रमणकारी से अपनी, अपने परिवार और अपने आश्रितों की तथा अपने धन, धर्म, समाज और देश की रक्षा करते हुए, जो हिंसा हो जाती है, वह विरोधी हिंसा कहलाती है।

संकल्पी हिंसा "की जाती है" और विरोधी हिंसा "हो जाती है" शब्द महत्त्वपूर्ण है। किसी आक्रमणकारी से अपनी सुरक्षा करते हुए अचानक और कभी-कभी मजबूरी से हो जाती है, परन्तु आक्रमणकारी का प्रतिकार करते हुए हमारे मन में केवल अपनी सुरक्षा करने की भावना ही होनी चाहिए, उसे किसी प्रकार का कष्ट देने, अनुचित तरीके से सताने या उससे बदला लेने की भावना नहीं।

प्रत्येक व्यक्ति को गृहस्थ में रहते हुए बहुत से ऐसे कार्य करने ही पड़ते हैं जिनमें हिंसा हो जाना अनिवार्य है। जैसे घर की सफाई, भोजन बनाना, खाद्य-वस्तुओं को साफ करना, कपड़े धोना, मकान बनवाना आदि। इन कार्यों से जो हिंसा हो जाती है उसको आरम्भी हिंसा कहते हैं। यहाँ पर भी हिंसा "हो जाती है", की नहीं जाती। इस प्रकार की हिंसा से बचने के लिए यह आवश्यक है कि हम जो भी कार्य करें अत्यन्त सावधानी से करें। अपने मन में हमेशा यही भावना रखें कि मेरे द्वारा किसी भी जीव को किसी भी तरह का कष्ट न पहुँचे। हमें अपनी आवश्यकता को यथा-सम्भव कम करते रहना चाहिए क्योंकि जितनी हमारी आवश्यकताएँ कम होंगी, उतनी ही हमारी जीवन-चक्र-धारा कम होगी,

और उसी अनुपात से हिंसा भी कम होगी। हमको बेकार व अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह भी नहीं करना चाहिए। सफाई करते समय जीव-जन्तुओं की सुरक्षा का ध्यान रखा जाना चाहिए। भोजन की सामग्री भी थोड़ी-थोड़ी लानी चाहिए। क्योंकि अधिक मात्रा में संग्रह करने से चींटीं सुलसुली आदि जीव उत्पन्न हो जाते हैं। चटनी, अचार व मुरब्बे आदि भी थोड़ी मात्रा में ही बनाने चाहिए, क्योंकि अधिक पुराने खाद्य पदार्थों में सूक्ष्म जीव उत्पन्न हो जाते हैं, इसलिए उनके सेवन से अधिक हिंसा होती है।

गृहस्थ में रहते हुए प्रत्येक व्यक्ति को अपना, अपने परिवार और अपने आश्रितों का पालन-पोषण करने के लिए व जीविकोपार्जन के लिए कुछ न कुछ उद्योग या व्यवसाय करना ही पड़ता है, इस कार्य के करने से हिंसा हो जाना स्वाभाविक है। इस प्रकार की हिंसा को उद्योगी हिंसा कहते हैं। व्यक्ति को ऐसे उद्योग व व्यवसाय तो करने ही नहीं चाहिए, जिनमें प्रत्यक्ष में ही हिंसा होती है। जैसे माँस, अण्डे, मुर्गी, मछली, खाल, चमड़े, हड्डी व उससे बनी हुई वस्तुओं का व्यापार। ढलाई करने व अनाज पीसने के व्यवसाय भी ऐसे हैं, जिनमें हिंसा होने की बहुत अधिक संभावनाएं हैं, इसके विपरीत हमको ऐसे उद्योग व व्यवसाय करने चाहिए, जिनमें हिंसा की सम्भावना कम से कम हो। यदि कोई अनाज का व्यापारी है तो उसे अधिक लाभ के लालच में पड़कर अधिक अनाज नहीं इकट्ठा करना चाहिए, जिससे अधिक दिन पड़े रहने से उसमें जीव उत्पन्न न हो जाये। हमें ऐसा साफ-सुथरा अनाज खरीदना व बेचना चाहिए, जिसमें जीव न पड़े हों। यदि हमको नौकरी भी करनी पड़े, तो ऐसी जगह पर करें, जहाँ कार्य करते समय हिंसा की संभावना कम से कम हो।

उपरोक्त चारों प्रकार की हिंसाओं में से संकल्पी हिंसा, महान हिंसा है और वो प्रत्येक व्यक्ति के लिए त्याज्य होती है। जहाँ तक साधुओं के अहिंसक होने का प्रश्न है, आरम्भी व उद्योगी हिंसा के अन्तर्गत गृहत्यागी साधु को ऐसे कार्य करने ही नहीं पड़ते, इसलिए साधुओं की आरम्भी व उद्योगी हिंसा भी छूट जाती है। प्रश्न रहा बाकी विरोधी हिंसा का, तो साधुओं का किसी से वैर व क्रोध नहीं होता। यदि कोई जानबूझकर भी उनको कष्ट पहुँचाता है तो वे उस कष्ट को, उस व्यक्ति के प्रति अपने मन में किसी प्रकार की भी दुर्भावना लाए विना, समता-पूर्वक सहन कर लेते हैं। उनका विचार तो यही होता है कि जो भी कष्ट मिला है, वह उनके अपने ही द्वारा किये हुए पूर्व कर्मों के फलस्वरूप मिला है। जो व्यक्ति कष्ट दे रहा है वह तो केवल निमित्तमात्र है। इसी कारण उनके मन में किसी के प्रति विरोध की भावना नहीं आती। इस प्रकार साधु पूर्ण रूप से अहिंसा का पालन करते हैं। वे अपने पास मुलायम तन्तुओं से वनी हुई एक रजोहरण रखते हैं। जहाँ पर भी उनको वैठना या कोई वस्तु रखनी होती है, वे उस स्थान को उस से साफ कर लेते है, जिससे कि किसी जीव को कष्ट न पहुंचे। वे सदैव हितकारी वचन बोलते हैं। भोजन भी अल्प-मात्रा में प्रयोग करते हैं, जिससे कि उनका शरीर चलता रहे। उनका भोजन भी स्वाद लोलुपता-विहीन एवं सादा होता है।

गृहस्थी के लिए संकल्पी हिंसा तो त्याज्य है ही, बाकी तीन प्रकार की हिंसा से भी उसे यथाशक्ति बचना चाहिये। ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि इन तीनों प्रकार की हिंसा से पाप नहीं होता, पाप तो अवश्य होता है, पर वह उस व्यक्ति की भावना के

अनुरूप ही होता है। सावधानी पूर्वक कार्य करते हुए और हिंसा के अवसरों से यथासम्भव बचते हुए भी जो हिंसा हो जाती है, उसका दोष कम लगता है। हमें यदि किसी आततायी से, अपनी, अपने शील की, समाज की, धर्म की और जन्मभूमि की रक्षा में हथियार भी उठाने पड़े और हमसे उस आततायी का घात भी हो जाए, तब हम हिंसा के दोषी नहीं होते। तभी तो सीता की मुक्ति के लिए राम द्वारा युद्ध का जैन कथा-ग्रन्थों में गुणगान किया गया है। इसी प्रकार पाण्डवों द्वारा भूमि के लिए मजबूरन किया गया युद्ध, धर्म-युद्ध कहलाया। जहाँ द्रोपदी को अपमानित करने वाले दुःशासन को दण्ड देने के प्रयास में मर जाने वाले अभिमन्यु को यश मिला तो उस अपमान को चुपचाप देखते रहने वाले भीष्म, युधिष्ठिर और अर्जुन आदि सभी की भर्त्सना हुई।

कुछ व्यक्ति यह मानते हैं कि केवल किसी मनुष्य की हत्या कर देना ही हिंसा है, इसके अतिरिक्त अन्य किसी कार्य से हिंसा नहीं होती। परन्तु यह नितान्त भ्रम ही है। हिंसा की परिभाषा की परिधि में अन्य कई कार्य-कलाप भी आते हैं, उनसे बचने के लिए अधिक आवश्यकता की जरूरत पड़ती है। किसी भी प्राणी को कष्ट देना या उसका वध करना तो प्रत्यक्ष हिंसा है ही, मनुष्यों या पशुओं से उनकी शक्ति से अधिक कार्य लेना या उन पर अधिक बोझ लादना, उनको भूखा रखना, आवश्यकता से कम भोजन देना, समय पर भोजन न देना, उनको अनुचित रूप से बाँधकर रखना या किसी अन्य प्रकार का कष्ट देना। किसी से कोई कार्य कराकर उसको उचित पारिश्रमिक न देना, किसी के न्यायोचित अधिकारों का हनन करना, ये सब कार्य भी हिंसा की श्रेणी में आते हैं। किसी को ऐसी सलाह देनी जिससे हिंसा

ो बढ़ावा मिले तथा किसी को हिंसा करने के लिये उपकरण देना तथा प्रोत्साहित करना, अन्याय और बेईमानी करना या इनका अनुमोदन करना आदि भी हिंसा है। कभी-कभी ऐसे कार्य भी व्यक्ति करने लगता है जिनसे उसका प्रयोजन तो कुछ भी सिद्ध नहीं होता परन्तु वो व्यर्थ में ही हिंसा का दोषी हो जाता है। जैसे—मन में किसी की अनिष्ट की कामना व किसी की पराजय की भावना, हवाई किले बनाना, बेकार में उछल कूद व भागदौड़ करना, किसी की ओर कंकड़-पत्थर फेंकना, पशु पक्षियों को परेशान करना आदि हमको अपने रूप, ज्ञान, शक्ति, धन, कुल व जाति आदि का भी अहंकार नहीं करना चाहिए। मन में ऐसी भावनाओं के आने से हम अपने को ऊँचा व दूसरों को नीचा समझने लगते हैं और अपने ऐसे व्यवहार से दूसरों को ठेस पहुँचाते हैं। इसलिये एक अहिंसक को किसी प्रकार का भी अहंकार नहीं करना चाहिए।

झूठे, कठोर वचन, पर-निन्दा, आपस में मन-मुटाव व भ्रम पैदा करने वाले वचन बोलना भी हिंसा है। क्योंकि इससे सुनने वाले को मानसिक कष्ट तो होता ही है, कभी-कभी शारीरिक कष्ट भी होता है। हमें ऐसे सत्य वचन भी नहीं बोलने चाहिये, जो सुनने वालों को अप्रिय लगे—जैसे किसी नेत्रहीन को अन्धा कहना। हमें ऐसे सत्य वचन भी नहीं बोलने चाहिये, जिनसे किसी प्राणी को कष्ट पहुँचने की सम्भावना हो, जैसे—किसी शिकारी को यह बतलाना कि पशु अमुक दिशा में गया है।

धन आजकल मनुष्य का प्राण है। अतः धन की हानि होने पर मनुष्य को बहुत कष्ट होता है। इसलिए किसी का धन व अन्य वस्तुएँ चोरी करना या छलकपट से अपहरण करना भी हिंसा ही है। यदि भूल से किसी व्यक्ति की कोई वस्तु गिर जाये

तो ऐसी वस्तु भी हमको नहीं लेनी चाहिए। क्योंकि याद आने पर वह व्यक्ति उस वस्तु को अवश्य खोजेगा और न मिलने पर उसको कष्ट होगा। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति हमारे पास कोई वस्तु धरोहर के रूप में रखकर भूल जाये, तो ऐसी वस्तु को भी अपनी मान लेना अनुचित है, वह धरोहर वापिस कर देनी चाहिये। अपनी वस्तु भूल जाने के कारण चाहे उस व्यक्ति को कष्ट भले ही न हो, परन्तु अपने विचार तो खराब हो ही जाते हैं।

कम तोलना, कम नापना, बढ़िया वस्तु के स्थान पर घटिया वस्तु देना और उसमें मिलावट करना, अधिक मूल्यों पर चीजों को बेचना भी हिंसा है। घटिया वस्तु देने से लेने वाले व्यक्ति को आर्थिक हानि होती है, मिलावटी खाद्य पदार्थों के सेवन से स्वास्थ्य खराब हो जाता है और कभी-कभी मृत्यु भी हो जाती हैं। मिलावटी औषधियां तो विष समान होती है।

इसी प्रकार जो व्यक्ति असत्य का आचरण करेगा, मन से, वाणी से, काया से, वह चोट पहुंचायेगा स्वयं को, अन्यों को, यह हिंसा होगी। हिंसा के त्याग में असत्य का त्याग गर्भित है। यह सम्पूर्ण जगत् एक प्रकार से हिंसामय ही है। चारों ओर के वातावरण में हमें ऐसा दिखता है कि एक जीव दूसरे जीव को निगल जाने के लिए प्रयत्नशील है। बड़ा छोटे पर हावी होता रहता है। आजकल राजनैतिक और आर्थिक जीवन में भी यही देखते हैं। बड़ा राष्ट्र छोटे राष्ट्र पर कब्जा करना चाहता है। धनवान व्यक्ति गरीबों का शोषणकर धनवान बने रहने को कृत-संकल्प हैं। ऐसी परिस्थिति में हमें स्वयं के साथ इस सारे समाज को बचाना है। यदि हम यह मान लें कि सारी दुनिया में भले

ही हिंसा होती रहे, हमें उससे कोई मतलब नहीं तो यह स्वार्थपूर्ण चिन्तन होगा।

सर्वांगीण दृष्टि से यह सोचा जाय तो व्यक्ति अकेला नहीं! वह एक सामाजिक प्राणी है। इसलिए समाज में चलने वाली हिंसा के प्रति वह भी उत्तरदायी है। इस संदर्भ में प्रत्येक व्यक्ति को प्रयत्न करना होगा कि समाज में फैली हुई हिंसा रुके व अहिंसा का दीप घर-घर जलेगा। जब तक समाज में पाप फैला हुआ है, भ्रष्टाचार व अन्याय फैला हुआ है तब तक हम हिंसा से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित न होते हुए भी यदि उस ओर उपेक्षा का भाव रखते हैं तो उस हिंसा के प्रति हम जिम्मेदार हैं। यह प्रत्यक्ष जिम्मेदारी महसूस करनी होगी।

हिंसा, अधिकार-लिप्सा, असहिष्णुता, सत्ता-लोलुपता और स्वार्थ से विषाक्त संसार में अहिंसा ही सर्वश्रेष्ठ विश्राम भूमि है, जहां पहुँचकर मनुष्य अमृतमय कलश को पा लेता है। अपनों को और दूसरों को समान धरातल पर रखने के लिए अहिंसा की निर्मल व पवित्र नेत्रों से देखना होगा यही कारण है कि विश्व के सभी धर्मों ने एक स्वर से अहिंसा के गौरव को स्वीकार किया है। मनुष्य के चारों ओर जिस भौतिक साधनों का घेरा पड़ा हुआ है और वह घेरा जिस मजबूती के साथ आदमी की प्रगति को अवरुद्ध कर रहा है, उसे तोड़ने का उच्च आध्यात्मिक साधन अहिंसा ही बन सकती है। कोई भी धर्म प्रभु से मिलने के लिए अहिंसा को छोड़ने के लिए नहीं कह सकता। करुणामूर्ति ईसा मसीह ने कहा है "कि यदि तुम प्रार्थना के लिए एक मन्दिर में जा रहे हो और उस समय तुम्हें याद आ जाय कि मेरी अमुक व्यक्ति से अनबन या खटपट है, तो तुम्हें लौट जाना चाहिए क्यों कि अपने उस विरोधी से क्षमा याचना किये बिना प्रार्थना करने

का तुम्हें कोई अधिकार नहीं।" महात्मा मसीह ने आगे कहा है कि—"यदि कोई दुश्मन तुम्हारे एक गाल पर तमाचा मारे तो तुम दूसरा गाल भी उसके सामने कर दो।

अन्य धर्मों की ही तरह, बल्कि उनसे भी कहीं ज्यादा जैन धर्म में अहिंसा को स्थान दिया है। उसकी छोटी-से-छोटी और बड़ी से बड़ी प्रत्येक साधना में अहिंसा का एक ऐसा मधुर संगीत बहता रहता है जो मनुष्य को आनन्द विभोर कर देता है। आज के व्यक्ति को जैन धर्म का सीधा सा ही अर्थ ज्ञात है और वो है—"अहिंसा-प्रधान धर्म"। क्योंकि जैन धर्म ने जीवन को अनन्त मुक्ति की ओर ले जाने के लिए जिन मार्गों का निर्देश किया है, उनमें अहिंसा का स्थान सबसे पहिला है।

यदि अहिंसा है तो सत्य भी टिकेगा, अचौर्य भी टिकेगा, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह की भावना भी टिकेगी। जीवन के जितने भी ऊँचे साधन हैं उन सब की प्राप्ति का साधन अहिंसा ही है। जैसे जमीन के आधार पर ही यह विशाल महल, गाँव, नगर अर्थात् सारी दुनियाँ टिकी हुई है, उसी तरह आध्यात्मिक साधना की आधार भूमि अहिंसा ही है। यदि अहिंसा का आधार न मिले तो आध्यात्मवाद का यह भव्य महल एक ऐसा रेत का महल साबित होगा जो किसी हल्के से धक्के के कारण गिर जाता है। मन का विवेक और जीवन का विवेक ही अहिंसा की भावना को जन्म देता है। हाथों का संयम, पैरों का संयम, वाणी का संयम, इन्द्रियों का संयम, मन का संयम इत्यादि हमारे जीवन की जो संयम-मूलक प्रक्रिया है, वही अहिंसा है।

ये दृष्टिकोण कि किसी प्राणी को न मारना या किसी की हत्या न करना ही अहिंसा है एकांगी दृष्टिकोण ही समझा जाएगा।

क्योंकि अहिंसा एक संपूर्ण जीवन-दर्शन है। उसका शरीर से सम्बन्ध कम, और मन से, भावनाओं से, व चित्त की वृत्तियों से अधिक है। जो साधक अहिंसा का व्रत लेगा वह न केवल शरीर से, न केवल वचन से बल्कि मन से भी किसी के प्रति बुरा विचार नहीं करेगा। कभी-कभी ऐसा होता है कि आदमी शरीर के द्वारा किसी का नुकसान करने में या किसी को मारने में या किसी की हत्या करने में असमर्थ होता है, फिर भी वह मन-ही-मन कुचक्रों का जाल बुनता रहता है। उसके मन में नाना प्रकार की चंचल प्रवृत्तियाँ पैदा होती रहती हैं। ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, इत्यादि नाना प्रकार की प्रवृत्तियों में उलझा हुआ व्यक्ति घोर हिंसक है। भले ही वह किसी जीव के प्राणों की आहुति न ले। विशेष रूप से जैन दृष्टिकोण में और जैन चिन्तकों के साहित्य में हमें यह विचार विशाल मात्रा में उपलब्ध होता है।

हिंसा की भावना निहायत राक्षसी भावना है। भले ही बाहर से हमें मनुष्य का शरीर दिखाई देता हो, लेकिन अन्तर में वह राक्षस ही है, जिसे न अपने अस्तित्व का पता है और न अपने अमूल्य जीवन का पता है। जो वासनाओं में भटक रहा हो, जो द्वेष तथा कलह की भावनाओं में ठोकरें खा रहा हो वह मनुष्य कदापि कहलाने का अधिकारी नहीं हो सकता। मनुष्य एक पवित्र प्राणी है। सारी सृष्टि का केन्द्र-बिन्दु वह मानव ही है। अतः मानव के बारे में किसी ऐसे घृणित स्वरूप की कल्पना नहीं की जा सकती। राम और रावण को अगर हम प्रतीक रूप में स्वीकार करें तो हमारे अन्दर ही दो तरह की वृत्तियाँ मौजूद हैं। एक वृत्ति राम की प्रतीक है, दूसरी वृत्ति रावण की प्रतीक है। यदि हम इन्सान बनना चाहते हैं, जीवन की क्षुद्रता से दूर होकर उच्च,

सुसभ्य कल्पनाओं को वरण करना चाहते हैं तो हमें अहिंसा की ज्ञान-गंगा में डुबकी लगाकर रावणमयी वृतियों को धो डालना होगा, क्योंकि जहाँ राम है वहाँ मोह नहीं होता, लोभ नहीं होता, अहंकार नहीं होता, माया का दुर्गुण नहीं होता। जहाँ रावण है, वहाँ प्रेम नहीं होता, करुणा नहीं होती, सौजन्य नहीं होता, सहानुभूति नहीं होती। इस प्रकार ये वृतियाँ हमें सहज जीवन की धाराएँ दिखाती हैं। एक धारा ऐसी है जो पवित्र निर्मल और आकर्षक होगी तथा दूसरी धारा ऐसी होगी जो मलिन, कुत्सित वीभत्स होगी।

यदि शरीर पर कोई गन्दगी लगी हो तब तो जल स्नान करने से सफाई हो सकती है, लेकिन जब वो गन्दगी अपने अन्दर हो, तब स्नान से पवित्रता कैसे हासिल हो सकती है? वस्तुतः सबसे बड़ा मन्दिर, सबसे बड़ा तीर्थ, सबसे बड़ा चर्च, सबसे बड़ी मस्जिद अपनी आत्मा ही है। मनुष्य को मनुष्य के अन्दर झांकने की जरूरत है। जैन धर्म अहिंसा की अमृत-गंगा का पवित्र स्रोत अपनी आत्मा के अन्दर ही ढूंढ़ता है। व्यक्ति की नस-नस में अहिंसा व सत्य की गंगा अविकल वह रही है। यदि हम उस पावन गंगा में स्नान नहीं करेंगे तो हमारा जीवन पवित्र नहीं हो सकेगा।

जीवन को पवित्र करने के लिए अहिंसा एक जीवन-गंगा है, जिसमें अवगाहन करने के पश्चात् मानवता का सम्पूर्ण विकास हो जाता है और दंभ व शोषण का जो नकाब मानवता के सुन्दर चेहरे पर आज पड़ गया है, वह सहज ही फट जाता है।

जिस तरह चैतन्य के अभाव में यह भारी-भरकम शरीर व्यर्थ साबित होता है उसी तरह सारे धर्मों का आधार अहिंसा है, क्योंकि जिस तरह आत्मा के बिना शरीर शव है, उसी तरह अहिंसा के बिना

धर्म निष्प्राण है। अहिंसा से रिक्त धर्म, धर्म नहीं, केवल कपोल कल्पना मात्र है। कोई भी धर्म कितना ही ऊँचा क्यों न हो, उसका प्रभाव कितना ही उग्र क्यों न हो, किन्तु जब तक अहिंसा की भावना उसमें विद्यमान नहीं रहेगी, तब तक धर्म अमूल्य है। हमारा जीवन-धर्म तभी अपना विशाल आकार ग्रहण कर सकता है, जब उसमें अहिंसा की भावना की लहरें हिलोरे लेने लगे, और तब जीवों के प्रति दया का झरना कल-कल करके बहने लगता है, पीड़ितों के लिए संवेदना उत्पन्न होने लगती है।

अहिंसा का स्थान ईश्वर से कम नहीं। भगवान महावीर ने अहिंसा को भगवती का नाम दिया है, क्योंकि मानव के हृदय में जितनी श्रद्धा, भक्ति ईश्वर के प्रति होती है, उतनी ही श्रद्धा अहिंसा के प्रति भी होनी चाहिए। अहिंसा निर्विवाद की पूजा है। श्रद्धा का केन्द्र है।

भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित अहिंसा तो इतनी व्यावहारिक, व्यापक और सार्वभौमिक है कि वह जीवन के हर क्षेत्र की, संसारी से तपस्वी तक की आधार बन गई है। इसके बगैर इस दृष्टि का टिकना भी कठिन हो जाता है। उनकी अहिंसा दृष्टि इतनी सूक्ष्म और दिव्य हो गई थी कि उसने पृथ्वी, जल, अग्नि और वनस्पति-कायिक सूक्षतम जीवों का भी, जो मनुष्य की तेज निगाहों की पकड़ में नहीं आ पाते, पता लगा लिया था। भगवान महावीर ने उपदेश देते हुए कहा था—"दुनिया में जितनी भी आत्माएँ हैं, उन सबमें एक समान चेतना है, इसलिए समस्त सृष्टि के प्राणियों को अपनी ही आत्मा के समान समझो। जिस काम से तुम्हारी आत्मा को कष्ट होता है, वह काम तुम दूसरों के प्रति भी मत करो। जिस दिन तुम्हें अपनी आत्मा में और दूसरे की आत्मा में कोई अन्तर मालूम नहीं होगा, उसी दिन

तुम्हारी अहिंसा की साधना सफल होगी अन्यथा अहिंसा का नाम केवल आडम्बर मात्र रह जायेगा।"

अहिंसा की यही कसौटी है। जिस दिन व्यक्ति अपने आप में जीने का अधिकार चाहेगा, उसी दिन वह दूसरों को भी जीने का अधिकार अवश्य देगा। यदि वह दूसरों को जीने का अधिकार नहीं देना चाहता तो उसे भी जीने का अधिकार नहीं मिलेगा। इस प्रकार अहिंसा की सच्ची कसौटी अपनी ही आत्मा है। धर्म और अधर्म, पाप और पुण्य और कुछ नहीं, केवल अपनी आत्मा के सम्बन्ध में अपने ही दृष्टिकोण के ये भिन्न-भिन्न अंग है। वास्तव में धर्म और अधर्म की, पुण्य और पाप की, भले और बुरे की सबसे बड़ी कसौटी अपनी ही आत्मा है। सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण बात इतनी ही है कि न तो केवल किसी को बचाना मात्र ही अहिंसा है और न किसी को मारना ही अहिंसा है, सर्वत्र निर्मल विवेक की आवश्यकता है। वस्तुतः अहिंसा हृदय की वह सहज अनुभूति है जिसमें से करुणा, सेवा व दया बरबस ही अनायास फूट पड़ती है। वह प्राणी मात्र को बिना किसी भेदभाव के अपने संरक्षण में ले लेती है। भगवान महावीर का कहना था कि धर्म और अहिंसा की सच्ची कसौटी विवेक ही है। जहाँ विवेक है, वहाँ अहिंसा है, जहाँ विवेक नहीं है, वहाँ अहिंसा भी नहीं है।

अहिंसा और हिंसा का प्रधान केन्द्र व्यक्ति का वह संकल्प है, जिस संकल्प के आधार पर सारे समाज का, सारी सृष्टि का और सारे विश्व का संचालन होता है। यदि उन संकल्पों में पवित्रता है, स्निग्धता है, सरलता है तो कोई कारण नहीं व्यक्ति हिंसा का भागीदार बनें। जीवगणना के द्वारा हिंसा एवं अहिंसा को आँकना जैन धर्म नहीं सिखाता।

अहिंसा को जब हम जीवन में उतारने के लिए चलते हैं तब हमारे सामने तीन प्रकार आते हैं। अर्थात् मन से, वचन से और शरीर से अहिंसा की साधना होनी चाहिए। यदि अहिंसा को सर्वांगीण रूप से सिद्ध करना है और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हिंसा से बचना है तो अहिंसा को मन, वचन, और शरीर से साधना होगा। शरीर पर नियंन्त्रण रखने से शरीर द्वारा होने वाले पाप रुक जाते हैं। इसी तरह वचन और मन पर अंकुश लगा देने से वचन और मन के पाप भी रुक जाते हैं।

अहिंसा एक मौलिक धर्म है। वह बहिरंग नहीं होती। अंतरंग दृष्टि है। किसी भी युग में दूसरों को सताना, पीड़ा पहुंचाना, मारना, शोषण करना व दूसरे के अधिकारों का हनन कभी भी धर्म नहीं हो सकता। जिस तरह शरीर के बदल जाने से आत्मा नहीं बदल जाती, वह किसी भी परिस्थिति में अपने मूल स्वरूप को नहीं छोड़ती सँसार में रहे या मोक्ष में जाये वह आत्मा है, आत्मा ही रहेगी, उसी तरह अहिंसा विवेक की भाव भूमि ही नहीं धर्म की आत्मा भी है। उसके मौलिक रूप में किसी भी समय और किसी भी परिस्थितिवश किसी प्रकार का परिवर्तन संभव नहीं है।

अहिंसा का अनुगायक : जिन धर्म

जिन धर्म (जैन धर्म) अहिंसा को प्रधान स्थान देता है। अक्सर जैन धर्म का प्रसंग आते ही अहिंसा याद आ जाती है। दोनों का परस्पर सम्बन्ध वैसा ही है जैसा अग्नि और उष्णता का तथा आत्मा और ज्ञान का।

अहिंसा का तत्व बहुत सूक्ष्म है। इसलिए हमें दृष्टिकोण को सर्वथा दोषमुक्त रखना होगा। जैन धर्म की हिंसा और अहिंसा के विवेचन को गहराई से समझने के लिए साधक को बुद्धि तथा विवेक को सतत् जागरूक रखने के लिए आदेश देता है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हिंसा का अर्थ केवल मारना ही नहीं, बल्कि मन में आया हुआ प्रत्येक दूषित संकल्प हिंसा है। किसी भी प्राणी की स्वतन्त्रता में बाधा पैदा करना भी हिंसा है।

प्रश्न यह है कि आखिर मनुष्य अपनी जिन्दगी में हरकत तो करता ही है। वह चलता है, खाता है। इस तरह कहीं न कहीं और किसी न किसी रूप में जीवों के निर्धारित मार्ग में रुकावट पैदा हो ही जाती है। ऐसी स्थिति में स्वाभवतः यह प्रश्न उपस्थित हो जाता है कि आखिर हम किस प्रकार अहिंसक रह सकते हैं? केवल गृहस्थ ही नहीं, बल्कि संसार से पूर्णतः निवृत साधु भी इन क्रियाओं के कारण दूसरे जीवों की स्वतन्त्रता में बाधक बन सकते हैं।

भगवान महावीर छः मास तक हिमालय की तरह अचल खड़े रहे, किन्तु उसके बाद वे भी भोजन के लिए इधर-उधर गए।

महीने, दो महीने, अधिक से अधिक छः महीने भी तपस्या में बिताये जा सकते हैं, किन्तु जीवन को कायम रखने के लिए, गमन, आगमन किए बिना तो कुछ भी नहीं हो सकता। वास्तव में किसी भी हरकत को हिंसा न कहकर उसके पीछे जो दूषित संकल्प है, जो विकृत भावना है या जो कषाय भाव है, वह हिंसा है और वही पाप भी। इसलिए यदि दृष्टि शुद्ध है तो कहीं भी पाप नहीं। यही बात खाने पीने के सम्बन्ध में भी है। मूलतः खाने पीने में पाप नहीं, किन्तु खाने पीने के पीछे वृत्ति क्या है? यदि खाना केवल खाने के लिए या स्वाद के लिए ही है तो वह खाना हिंसामय ही है। यदि खाने के पीछे विवेक है, यतना है, जीने के लिए खाना है खाकर समाज की सेवा करने का संकल्प है, तो ऐसा खाना धर्म है। धर्म तपस्या है या भोजन? यदि छः महीने तक तपस्या की और फिर एक दिन भोजन किया तो वह भोजन धर्म है! यदि भोजन करेंगे तो तपस्या कैसे करेंगे? और यदि तपस्या करके भोजन करना पाप है तो फिर साधना पथ पर आने से पहले ही दिन, आजीवन भोजन का परित्याग कर देना चाहिए। अतः ये सही है कि आत्म-विकास की मंजिल तक जाने के लिए तपस्या भी आवश्यक है और आहार भी आवश्यक है। जब तपस्या की उपयोगिता हो तो तपस्या धर्म है और जब आहार की उपयोगिता हो तो आहार धर्म है। इसलिए भगवान महावीर ने जब तपस्या की, तब भी उन्हें धर्म हुआ और जब आहार किया तब भी उन्हें धर्म हुआ।

अहिंसा क्या है? वस्तुतः क्या वह संसार से अलग-थलग अकेली खड़ी है? क्या उसका संसार के जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है? क्या सामाजिक जीवन की मर्यादाओं से उसका कोई सामंजस्य नहीं? यदि वस्तुतः अहिंसा समाज के लिए, इस संसार

के लिए और इस जीवन के लिए उपयोगी साबित नहीं होती है तो उस अहिंसा का पालन इस समाज में और इस जीवन में करने का कोई तुक नहीं रहता। जो अहिंसा कर्म-क्षेत्र से अलग हो जाती है, जो अहिंसा निष्क्रिय होकर हर जगह से भटकना ही चाहती है, जो अहिंसा प्रवृति से डर कर कोने में दुबक जाती है, जो अहिंसा अपने आप को सामाजिक जीवन से अलग मानती है, वह अहिंसा किसी भी रूप में उपयोगी नहीं हो सकती।

जीवन के क्षेत्र में चाहे साधु हो या श्रावक—दोनों के लिए प्रवृति और निवृति समान रूप से आवश्यक है। असद् आचरण से निवृत होना और सद् आचरण में प्रवृत होना सबको स्वीकार्य ही होगा? सेवा करो, प्रेम करो, दया करो, उपकार करो— ये सब करने के काम हैं।

कुछ संम्प्रदायों में या कुछ विचार-परम्पराओं में अहिंसा की कल्पना को अत्यन्त संकुचित क्षेत्र में वांध दिया गया है। किसी भी तरह की सामाजिक प्रवृति को और सामाजिक सेवा को सामाजिक सुधार को प्रवृति का नाम देकर उसे पाप माना जाता है और उससे दूर रहनें की प्रेरणा दी जाती है जबकि वास्तव में अंहिसा सामाजिक जीवन की रीढ़ है। यदि सामाजिक जीवन टूट जायेगा, यदि सामाजिकता के टुकड़े-टुकड़े हो जायेगें तो कहाँ तक यह अहिंसा टिकेगी? कहाँ तक धर्म टिकेगा? इसलिए इन सबसे ऊपर जो तत्व है, वह समाज है, समाज को धुरी मानकर ही हम उसके आस-पास की भूमि तैयार करते हैं और समाज को वलवान और सुदृढ़ वनाने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की मर्यादाओं का निर्माण करते है। यदि उन मर्यादाओं की रक्षा के लिए हम मूल तत्व का विनाश कर वैठेगें, तो वे मर्यादाएँ क्या काम आयेंगी?

जब इन्सान पर इन्सान हावी हो रहा हो, जब चारों ओर हिंसा तथा शोषण का दमन चक्र चल रहा हो, जब समाज में अज्ञान, दंभ और दरिद्रता के प्रचण्ड प्रकोप फैले हो तब यदि कोई व्यक्ति ऐसा कहे कि मैं तो अहिंसक हूं, तटस्थ हूं, मुझे इस समाज की हीन अवस्था से क्या सारोकार है ? तो उस कहने वाले की हृदय-हीनता के अलावा और कुछ नहीं है। न तो उसके मन में अहिंसा की भावना है और न उसने अहिंसा के तत्व को पहिचाना है तथा वह अहिंसा के मार्ग का पथिक भी नहीं हो सकता। वह या तो कायर है, आलसी है, या निष्क्रिय है। जिसके हृदय में करुणा है, प्रेम है, दया है वह व्यक्ति समाज के अन्दर ही अन्दर इस सुलगने वाली भयंकर आग को देख नहीं सकेगा वरन् उसे बुझाने का प्रयत्न करेगा। अतः जब अन्तःकरण में दया व करुणा उत्पन्न होती है तो मनुष्य भावविभोर हो जाता है। उस समय पुराने पाप-कर्म नष्ट हो जाते है।

कई बार अहिंसा को अच्छी चीज मानते हुए भी इसे साधारण जीवन में अव्यवाहरिक होने की संज्ञा दी जाती है। ऐसा कहकर अहिंसा की उपयोगिता को नष्ट करने का असफल प्रयास किया जाता है, क्योंकि चाहे कैसी भी श्रेष्ठ वस्तु क्यों न हो, उसका कितना ही मूल्य क्यों न हो, फिर भी यदि वह जीवन के लिए उपयोगी नहीं तो उसको अपनाने से क्या फायदा ? प्रत्येक सिद्धान्त की कसौटी उसकी व्यावहारिकता पर ही निर्भर है। परन्तु अहिंसा अव्यावहारिक नहीं।

लोग ऐसा समझते हैं कि हिंसा के रास्ते से समस्या पर काबू पाया जा सकता है, किन्तु वस्तुस्थिति इसके सर्वथा विपरीत है। हिंसा से समस्या सुलझती नहीं, दब सकती है। किन्तु जब यह दबी हुई समस्या की चिंगारी फिर दुगने वेग से उभरती है तो अत्यधिक

हानिकारक साबित होती है। यह निर्विवाद सत्य है कि पूरा संसार मानव शान्ति के साथ जीवन व्यतीत करना चाहता है। वह रोज-रोज की तनातनी को कदापि नहीं पसन्द करता। वो प्रेम चाहता है, मित्रता चाहता है, सह-अस्तित्व की भावना व सद्भावना की चाह करता है। इसलिए आम जनता की वस्तु तो केवल अहिंसा ही है। हिंसा तो केवल चन्द लोगों के दिमाग का फितूर है, लेकिन जो वस्तु जनता की होती है वह स्थायी और प्रमाणिक होती है।

जहाँ कहीं भी थोड़ी-बहुत हिंसा फूटती है, वहाँ लोग सहज ही उसे रोकने के लिए दौड़ पड़ते हैं। यदि अहिंसा अव्यावहारिक होती और हिंसा व्यावहारिक, तो ऐसा कभी न होता। परन्तु अत्यन्त स्वाभाविक और पूर्ण व्यावहारिकता के तत्वों को अहिंसा ने ही अपने में विसर्जित किया है। अगर हमारे जीवन से यह तत्व निकल जाय तो हम अत्यन्त कटु-स्वभाव के हो जायेंगे और समाज की सारी एकता छिन्न-भिन्न हो जाएगी। आज जो भी, जितना भी समाज में मैतैक्य है, स्नेह है, बन्धुत्व भावना है, सद्भाव है, वो केवल अहिंसा के कारण ही है। अहिंसा मानव के सांस्कृतिक विकास की पृष्ठभूमि है। हमें अहिंसा के व्यापक स्वरूप की ओर ही ध्यान देना चाहिए और मानसिक कालुष्य से ऊपर उठकर जीवन के सम्बन्धों को स्थिर करना चाहिए।

हिंसा एक प्रकार से अंधकार है। यह अंधकार आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में फैला हुआ है। वास्तव में आज मनुष्य ने अपने अस्तित्व को विस्मृत कर लिया है और इसलिए वो परेशान भी है। जैसे रात के समय घर में चोरों के घुस आने पर घर वाले लड़ने को तैयार होते हैं चोरों से, लेकिन लाठियाँ बरसाने लगते हैं अपने ही घरवालों पर। अंधकार में अपने-पराये का भेद नहीं हो

पाता। अहिंसा इस अंधकार में प्रकाश की रेखा बनकर आती है। यह अंधकार हमें भेद के कटघरों में बाँध देता है और अहिंसा फिर से उन कटघरों को तोड़कर हमें एकता के सूत्र में पिरो देता है। यह मनुष्य जीवन की एक दुर्लभ वस्तु है।

अहिंसक समाज-रचना के मार्ग में जातिवाद और वर्णवाद एक भयंकर रोड़ा है। इस रोड़े को हटाने के लिए व्यक्तियों के संस्कारों को बदलना होगा और चारों ओर से सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्रान्ति का नारा बुलन्द करना पड़ेगा। अगर हम चाहते हैं कि अहिंसा का अद्यतन विश्लेपण हो और मानव-जीवन में जहाँ-जहाँ हिंसा के कीटाणु व्याप्त है वहाँ-वहाँ अहिंसा के हथियार का प्रयोग किया जाय तो इस वर्ण-व्यवस्था की गलत-मान्यता पर सबसे पहले प्रहार करना होगा तथा मानवता को एवं सम्पूर्ण मनुष्य जाति को एकता के सूत्र में पिरोने का अनुष्ठान करना होगा।

जीवन है, समाज है और राष्ट्र है। इन तीनों का एक-दूसरे के साथ बहुत गहरा सम्बन्ध है। वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन के विविध रूपों में मानव अपनी भावनाएँ क्रिया के रूप में अवतरित करता रहता है। ये भावनाएँ हिंसा एवं अहिंसा के रूप में असंख्य भेदों को प्रकट करती है। जिस किसी भी क्षेत्र में या किसी भी ढंग से, जो भी ज्ञात व अज्ञात, सूक्ष्म या स्थूल, बाह्य या आन्तरिक हिंसा है, वहाँ मानव का सद्विवेक चाहता है कि हिंसा का स्थान अहिंसा ग्रहण कर ले। अहिंसा के द्वारा ही व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का त्रास संभव है, इसलिए ही जैन धर्म प्रत्येक क्षेत्र में, प्रत्येक स्थान पर हिंसा को पद्दलित करके अहिंसा को सर्वेसर्वा बनाना चाहता है।

बलि की भी बलि

भगवान महावीर के समय में धर्म के नाम पर यज्ञों में पशुओं की और कभी-कभी मनुष्यों की भी बलि दी जाती थी। यह सब वेदों के नाम पर और वेदों के अनुसार किया जाता था। इसके समर्थन में कहा जाता था कि यज्ञों में जो बलि दी जाती है वह हिंसा नहीं है, क्योंकि यज्ञों से धर्म होता है तथा इन पशुओं को पीड़ा नहीं होती और ये पशु स्वर्ग जाते हैं।

भगवान महावीर के द्वारा हुए अहिंसा के प्रचार के कारण इस बलि प्रथा में बहुत कमी हुई। फिर भी किसी न किसी रूप में यह बलि प्रथा आज तक चली आ रही है। आज भी बकरों, भेड़ों, भैंसों, मुर्गों आदि की व चोरी से मनुष्य की भी बलि दी जाती है। हिन्दू अपने देवी-देवताओं को खुश करने के लिए बलि देते हैं। मुसलमान अपने खुदा की राह में अपनी सबसे प्यारी वस्तु की कुर्बानी देते हैं (इनकी सबसे प्यारी वस्तु ये दीन-हीन भेड़-बकरे ही होते हैं।) बहुत से आदिवासी भूत-प्रेतों और दुख-बीमारी आदि से बचने के लिए अपने देवताओं के प्रसन्नार्थ पशुओं की और कभी-कभी मनुष्यों तक की बलि देते हैं।

क्या इस प्रकार से बलि देना उचित है ? क्या इससे धर्म होता है ? क्या इससे हिन्दुओं के ईश्वर और मुसलमानों के अल्लाह प्रसन्न होते हैं ? क्या इससे किसी की मनोकामनाएँ पूरी हो सकती हैं ?

वेदों में हिंसा महापाप के रूप में दर्शायी गयी है। वेदों में बहुत से स्थानों पर ऐसा भी हुआ है कि एक ही शब्द के दो अर्थ होने के कारण व्यक्तियों ने अपनी-अपनी मनोवृत्ति के अनुकूल इन द्वयर्थक शब्दों के अर्थ लगा दिए। यथा "अज" ! इसका एक

अर्थ है, "पुराना धान जो फिर से न उग सके", इसका दूसरा अर्थ है 'बकरा'। जो विद्वान् संयमी और दयालु थे उन्होंने इसका अर्थ पुराना धान माना, किन्तु जो विद्वान् माँसलोलुपी थे, उन्होंने इसका अर्थ बकरा माना। इसी प्रकार प्राचीन काल में—

१. फलों के छिलकों को चर्म कहते थे।
२. फलों से जो रस निकलता था वह रुधिर कहलाता था।
३. फलों के गूदे को मांस कहते थे।
४. फलों की गुठली को अस्थि कहते थे।
५. फलों के भीतरी भाग को मज्जा कहते थे।

कुछ द्वयर्थक शब्द

कपि—बन्दर, शिलारस।
आम—मांस, आम्रफल।
शश—खरगोश, लोध्र।
अनिमिष—मछली, देव, चांडाल, शिष्य।
कलभ—हाथी का बच्चा, धतूरे का वृक्ष।
गो-जिह्वा—गाय की जीभ, गोभी।
तुरंग—घोड़ा, सेंधा नमक।
मार्जार—बिल्ली, हिंगोरी वृक्ष, लवंग।
वराह—सूअर, नागरमोथा।

इस प्रकार के और भी अनेकों शब्द हैं, जिनका संकलन 'अमरकोश', विश्वप्रकाश', 'अनेकार्थ संग्रह' आदि कोशों में दिखलाई पड़ता है। एक शब्द के कई अर्थ होने से लोगों में किसी शब्द के बारे में भ्रम हो जाना स्वाभाविक है, जबकि किसी भी शब्द का अर्थ प्रसंग के अनुसार लगाना चाहिए। कहीं-कहीं ऐसा

भी हुआ है कि मनुष्य की दुर्भावना, कुविचार, छल-कपट, अहंकार आदि की मनोवृत्ति को सूचित करने के लिए पशु के नाम से पुकारा गया है, ऐसे मन्त्रों का तात्पर्य यही है कि व्यक्ति के अंदर जो कुविचार, दुर्भावना व पशुवृत्ति है, उसकी बलि देनी चाहिए। परन्तु मांसलोलुपी व अर्थलोलुपी व्यक्तियों ने ऐसे शब्दों का तात्पर्य पशु ही मानकर पशुबलि का समर्थन करना प्रारम्भ कर दिया।

आज भी हमें कई समाचार-पत्रों में पढ़ने को मिलता है कि अमुक व्यक्ति ने सन्तान पाने की इच्छा से एक बालक की बलि दे दी, अमुक व्यक्ति ने धन पाने की इच्छा से एक मनुष्य की बलि दे दी।

हम सबको इन तथाकथित धर्म-श्रद्धालुओं की मान्यताओं को तर्क की कसौटी पर कसकर देखना है। क्या ईश्वर और अल्लाह इस प्रकार की पशु बलि से प्रसन्न होते हैं ?

यदि हम ईश्वर व अल्लाह को संसार के समस्त प्राणियों पर दया करने वाला मानें तो कोई भी दयालु, ईश्वर व अल्लाह इन निर्दोष एवं मूक प्राणियों की हत्या से प्रसन्न नहीं हो सकता। एक ओर तो हम ईश्वर और अल्लाह को दयालु, कृपालु, दीनानाथ, सच्चा न्यायी आदि नामों से पुकारें और दूसरी ओर उनके नाम पर इस प्रकार निर्दयतापूर्वक हत्याकाण्ड करें। क्या ईश्वर और अल्लाह ऐसे क्रूर कार्यों को न्यायोचित कहेंगे ?

इन प्रश्नों का उत्तर कुछ वधस्थलों को देखने से ही मिल सकता है। वध किये जाने वाले पशुओं को पहले से ही अपनी हत्या किये जाने व पीड़ा होने का भान हो जाता है। उनको बल-पूर्वक खींच-खींचकर वधस्थलों पर लाया जाता है। कई बार तो वधिक इन पशुओं का मुँह रस्सी से बाँध देते हैं, जिससे पीड़ा के कारण उनके मुँह से आवाज भी न निकल सके। वध किये जाते

समय वह पशु किस प्रकार तड़पता है और किस प्रकार तड़प-तड़पकर उसके प्राण निकलते हैं, यह दृश्य देखने में ही बहुत करुणाजनक होता है।

क्या वलि दिये जाने वाले पशु स्वर्ग जाते हैं ? इस सम्वन्ध में तो कोई कुछ नहीं कह सकता। परन्तु इतना अवश्य है कि मरते समय जिस पशु को इतनी शारीरिक पीड़ा हो रही हो, उसके हृदय में न जाने कितनी तीव्र दुर्भावनाएं उत्पन्न हो रही होगीं ? क्या हृदय में तीव्र दुर्भावनाएँ लेकर मरने वाला कोई भी जीव स्वर्ग जा सकता है ? एक वात और—यदि स्वर्ग प्राप्त करने का मार्ग इतना सीधा व सरल है तो मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करने के लिए वर्षों तक कठोर तपस्या क्यों करते हैं ? भगवान की वेदी पर अपनी ही वलि चढ़वा दिया करें, कुछ ही क्षणों का कष्ट होगा, फिर तो अनन्तकाल तक सुख ही सुख है।

ये उपरोक्त तथ्यों से सावित हो जाता है कि किन्हीं व्यक्तियों ने अपनी दूषित मनोवृत्ति की तुष्टि के लिए अर्थ के अनर्थ कर दिए हैं। वास्तव में वलि देने, और कुर्वानी देने का तात्पर्य तो यही है कि अपनी दुर्भावनाओं की, अपनी झूठी माया ममता की, अपनी विषय वासनाओं की और अपने अन्दर छिपी हुई पशु वृत्ति की वलि दो। ऐसा करने से ही आत्मा पवित्र व उन्नत होगी और सच्चे सुख का मार्ग प्रशस्त होगा।

अहिंसा की जययात्रा

अहिंसा की परिधि के अन्तर्गत समस्त धर्म व समस्त दर्शन मिल जाते हैं। यही कारण है कि प्रायः सभी धर्मों ने इसे स्वीकार किया है। यहाँ के चिन्तन में, समस्त धर्म-संप्रदायों में अहिंसा के सम्वन्ध में, उसकी महत्ता और उपयोगिता के सम्वन्ध में विभिन्न

मत नहीं है भले ही उनकी सीमाएं अलग-अलग है। कोई भी धर्म ये नहीं कहता कि झूठ बोलना, चोरी करना, धर्म है और जब ये धर्म नहीं तो हिंसा धर्म कैसे हो सकती है। सभी धर्मों ने अहिंसा को परमोधर्म माना है।

भगवान महावीर ने जनमानस को उद्बुद्ध करते हुए कहा—

"हिंसा कभी भी धर्म नहीं हो सकती, विश्व के सभी प्राणी, वे चाहे कोई भी हों, मरना नहीं चाहते, सबको अपना जीवन प्यारा है। सब सुख को प्यार करते हैं, दुःख को कोई नहीं चाहता। जिस हिंसक व्यापार को तुम अपने लिए पसन्द नहीं करते, उसे दूसरा भी पसन्द नहीं करता। जिस दयामय व्यवहार को तुम पसन्द करते हो, उसे सभी पसन्द करते हैं। अहिंसा, संयम और तप यही वास्तविक धर्म है। सभी जीवों के प्रति अहिंसक होकर रहना चाहिए। सच्चा संयमी वही है, जो मन, वचन और शरीर से किसी की हिंसा नहीं करता।"

जैन दर्शन में अहिंसा के दो पक्ष हैं। 'नहीं मारना' और मैत्री, करुणा और सेवा।

'आर्य' की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए तथागत बुद्ध ने कहा है—"प्राणियों की हिंसा करने से कोई आर्य नहीं कहलाता, बल्कि जो प्राणी की हिंसा नहीं करता, उसी को आर्य कहा जाता है।"

"सब लोग दण्ड से डरते हैं, मृत्यु से भय खाते हैं। मनुष्य दूसरों को अपने समान जानकर न तो किसी को मारे और न किसी को न मारने की प्रेरणा करे। जो न स्वयं किसी का घात करता है, न दूसरों से करवाता है, न स्वयं किसी को जीतता है, वह समस्त प्राणियों का मित्र होता है, उसका किसी के साथ वैर नहीं होता।" इस प्रकार बुद्ध ने भी हिंसा का निषेध और दया

करुणा की स्थापना करके अहिंसा की प्रतिष्ठा करने का प्रयत्न किया है।

वैदिक धर्म भी अहिंसा प्रधान धर्म है। "अहिंसा परमोधर्मः" के अटल सिद्धान्त को सम्मुख रखकर उसने अहिंसा की विवेचना की है। अहिंसा ही सबसे उत्तम पावन धर्म है, अतः मनुष्य को कभी भी, कहीं भी, किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिए।" जो कार्य तुमको पसन्द है वो दूसरों के लिए कभी भी मत करो।" इस नश्वर शरीर व जीवन में न तो किसी प्राणी की हिंसा करो और न किसी को पीड़ा पहुँचाओ। वल्कि सभी आत्माओं के प्रति मैत्री भावना रक्खो। किसी के साथ वैर न करो। अहिंसा ही एकमात्र पूर्ण धर्म है। हिंसा, धर्म और तप का नाश करने वाली हैं। अतः यह स्पष्ट है कि वैदिक धर्म भी अहिंसा की महत्ता को एक स्वर से स्वीकार करता है।

इस्लाम धर्म की अट्टालिका भी अहिंसा की नींव पर ही टिकी हुई है। इस्लामधर्म में कहा जाता है कि—खुदा सारे (खल्क) जगत का (खालिक) पिता है। जगत में जितने भी प्राणी हैं, वे सभी खुदा के पुत्र (वन्दे) हैं। मुहम्मद साहव के उत्तराधिकारी हजरत अली साहव ने भी कहा है—हे मानव! तू पशु-पक्षियों की कब्र अपने पेट में मत वना अर्थात् पशु-पक्षियों को मारकर उनको अपना भोजन मत वनाओ। इसी प्रकार दीन इलाही के प्रवर्त्तक मुगल सम्राट अकवर ने कहा है—"मैं अपने पेट को दूसरे जीवों का कब्रिस्तान वनाना नहीं चाहता, जिसने किसी की जान वचाई—उसने मानो सारे इन्सानों को जिन्दगी वक्शी।" इस प्रकार इस्लाम धर्म ग्रन्थों में भी अहिंसा के स्वरों की गूंज है।

महात्मा ईसामसीह ने कहा है कि—"तू अपनी तलवार म्यान

में रख ले, क्योंकि जो लोग तलवार चलाते हैं, वे सब तलवार से ही नाश किये जायेंगे।"

"किसी भी जीव की हिंसा मत करो। मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम अपने दुश्मन को प्यार करो और जो लोग तुम्हें सताते हैं, उनके लिए ईश्वर से प्रार्थना करो। तभी तुम स्वर्ग में रहने वाले अपने पिता की संतान ठहरोगे, क्योंकि वह भले और बुरे दोनों पर अपना सूर्य उदय करता है। धर्मियों और अधर्मियों, दोनों पर अपना प्यार बरसाता है।"

उपरोक्त महात्मा ईसा के विचारों का सामंजस्य आज भी ईसाई धर्म की जान है। ईसाई धर्म में भी प्रेम, करुणा और सेवा की अत्यन्त सुन्दर भावना व्यक्त की गई है।

यहूदी धर्म में कहा गया है—"यदि तुम्हारा शत्रु तुम्हें मारने को आए और वह भूखा-प्यासा तुम्हारे घर पहुँचे; तो उसे खाना दो, पानी दो।"

"अपने मन में किसी के प्रति वैर का, दुश्मनी का दुर्भाव मत रखो।"

इस प्रकार यहूदी धर्म प्रवर्तकों ने भी अहिंसा के ऊपर जोर दिया और उसी पर अपने धर्म को आधारित कर स्थापित किया है।

वस्तुतः कोई भी धर्म बिना अहिंसा के अपूर्ण है, इसलिए समस्त धर्म-प्रवर्तकों ने अहिंसा को अपने धर्म का मूलाधार माना है। इसकी जययात्रा में सभी धर्मों की सेनावाहिनी है और विजय की ओर अग्रसर है हिंसक मानव की क्रूर और अमानवीय भावनाओं पर।

प्रश्नों के घेरे में अहिंसा

कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि समस्त संसार में असंख्य स्थूल जीवों के अतिरिक्त असंख्य सूक्ष्म जीव भरे हुए हैं। हमारे दैनिक

जीवन में इनका घात होता ही रहता है। इसलिए पूर्ण अहिंसा का पालन करना असम्भव है; और जब अहिंसा का पालन करना असम्भव है तो अहिंसा पर इतना बल क्यों दिया जाये ?

यह ठीक है कि किसी भी व्यक्ति द्वारा पूर्ण अहिंसा का पालन करना असम्भव है, परन्तु इसका अर्थ यह तो नहीं कि अनावश्यक अहिंसा को प्रोत्साहन दिया जाये। हम सबका कर्त्तव्य तो यह है कि हम जो भी कार्य करें बहुत सावधानी पूर्वक करें और इस बात का ध्यान रखें कि हमारे किसी भी कार्य से किसी भी जीव को किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुँचे। हमारे हृदय जीव दया की भावना से परिपूर्ण हों और हम यथासम्भव अनावश्यक दौड़ धूप से बचते रहें। यदि हम इस प्रकार का व्यवहार करेंगे तो बहुत सी अनावश्यक हिंसा से बच सकेंगे।

जैन शास्त्रों के अनुसार प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव जी ने जीवकोपार्जन के लिए मनुष्यों को असि, मसि, कृषि, शिल्प, वाणिज्य आदि की शिक्षा दी थी। भगवान ऋषभदेव महान ज्ञानी थे। वे जानते थे कि शस्त्रों का प्रयोग करने से व कृषि, उद्योग आदि से हिंसा हो जाना अनिवार्य है। प्रश्न यह है कि फिर भी उन्होंने ऐसे हिंसक कार्यों की शिक्षा क्यों दी ? इसका केवल उत्तर यही है कि उन्होंने तत्कालीन समय की मांग को समझा था। शस्त्रों का प्रयोग दूसरों को कष्ट पहुँचाने के लिए नहीं वरन् अपनी व अपने आश्रितों की रक्षा के लिए बतलाया था। कृषि की शिक्षा उन्होंने इसलिए दी थी कि जिससे मनुष्य अन्न का उत्पादन करके अपना पेट भर सके। भगवान ऋषभदेव जी का उद्देश्य कृषि के द्वारा अनाज उत्पन्न करना था; न कि जीवों की हिंसा करना। उन्होंने यही शिक्षा दी थी कि जो भी कार्य करो बहुत सावधानी पूर्वक और दया की भावना से करो।

कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि शेर, चीते, भेड़िए, सांप, विच्छू, आदि जीव मनुष्य को कष्ट देते हैं, इसलिए ऐसे जीवों को मारने में कोई बुराई नहीं है ?

परन्तु वस्तुत: इस तर्क को असंगत ही कहा जायेगा। तथ्य तो यह है कि सभी जीव मनुष्य से डरते हैं। वे उसी दशा में मनुष्य पर प्रहार या आक्रमण करते हैं जब उनको यह भय होता है कि यह मनुष्य हमारा अनिष्ट करेगा। अन्यथा वे जीव तो मनुष्य को देखकर उससे छिपने का ही प्रयत्न करते हैं। साँप, विच्छू आदि जीव तभी काटते हैं जब उनको छेड़ा जाता है या उनके ऊपर पाँव पड़ जाता है। यदि हम ऐसे जीवों को यह वहाना वनाकर मारने लगे कि वे हिंसक हैं तो हम उससे भी वड़े हिंसक होंगे। हमारा न्याय कौन करेगा, कैसे करेगा ? वे जीव तो केवल लाचारी में ही मनुष्य पर आक्रमण करते हैं, परन्तु मनुष्य अपनी जिह्वा के स्वाद के लिए, अपने शरीर को सजाने के लिए और अपने मनोरंजन के लिए मूक प्राणियों की सामूहिक हत्या करता है। वे पशु-पक्षी तो केवल दूसरी जाति के जीवों की ही हत्या करते हैं और वह भी अपने प्रकृतिदत्त स्वभाव के कारण, परन्तु मनुष्य तो अपनी तृष्णा और स्वार्थवश मनुष्यों, अपने वान्ध-वन्धुओं की भी हत्या करने से नहीं हिचकिचाता। एक अन्य वात, ये पशु-पक्षी तो दूसरों पर आक्रमण करने के लिए अपने शारीरिक अंगों का ही प्रयोग करते हैं, जो इनकी अपनी सुरक्षा के लिए इनको प्रकृति की देन है। परन्तु मनुष्य ने तो एक से वढ़कर एक घातक अस्त्र-शस्त्र वना लिये हैं जिनसे वह क्षण भर में ही सैकड़ों मील तक प्रत्येक प्राणी की हत्या कर सकता है। वैज्ञानिकों ने जो उपकरण मनुष्यों की सेवा व सुरक्षा के लिए वनाये थे, उन उपकरणों का भी मनुष्यों की हत्या करने

के लिए किया जा रहा है। फिर कौन बड़ा हिंसक हुआ ? पशु या मनुष्य ?

कई व्यक्तियों की यह मान्यता कि यदि कोई जीव भयंकर पीड़ा से छटपटा रहा हो तो उसका वध कर देना चाहिए, जिससे कि उसकी पीड़ा का अन्त हो जाये ?

यह मान्यता गलत है। धार्मिक दृष्टि तो यही कहती है कि किसी भी जीव को जो कोई भी कष्ट मिल रहा है वह उसके अपने द्वारा पूर्व में किये हुए पापों के फलस्वरूप ही मिल रहा है। यहाँ पर मृत्यु हो जाने से उस जीव के पाप नष्ट नहीं हो जाते। अपने पापों का फल तो उसको भोगना ही पड़ेगा, इसलिए इस योनि में मृत्यु हो जाने से उसके कष्ट समाप्त नहीं होंगे। हमारा कर्त्तव्य तो यह है कि कष्ट पा रहे जीवों की सेवा-सुश्रुसा करके सुख व शान्ति पहुँचाये। हमारे प्रयत्नों से उन्हें सुख शान्ति मिलती है या नहीं, यह हमारे वश में नहीं है। यदि हमारा कोई सम्बन्धी या अन्य कोई मनुष्य इस प्रकार पीड़ित हो तो क्या हम उसके साथ भी ऐसा ही व्यवहार कर सकेंगे ?

कई व्यक्ति यह प्रश्न करते हैं कि यदि हम अहिंसा का पालन करेंगे तो हम आक्रमणकारी का सामना कैसे करेंगे ? अपराधी को दण्ड कैसे देंगे ? क्योंकि ऐसा करने में हिंसा हो जाना अवश्यं-भावी है ?

इसका सीधा सा उत्तर है। जो व्यक्ति गृहत्यागी साधु है, उनको तो किसी प्रकार का भी प्रतिकार करना ही नहीं है। चाहे कोई उनको कितना भी कष्ट दे। परन्तु जो व्यक्ति गृहस्थ आश्रम में है उनका सर्वप्रथम कर्त्तय है कि वे आक्रमणकारी का यथा-शक्ति प्रतिरोध करें। यदि आक्रमणकारी का प्रतिरोध नहीं किया जायेगा तो विदेशियों द्वारा उनका देश पददलित किया जायेगा।

आक्रमणकारी का पूरी शक्ति से प्रतिरोध न करके अहिंसा की रट लगाना निम्न श्रेणी की कायरता है। और कायरता स्वयं ही एक महापाप है। किसी पर अत्याचार करना हिंसा है, पाप है, परन्तु बिना विरोध किये किसी का अत्याचार सहना तथा अत्याचारी के आगे आत्मसमर्पण कर देना महापाप है। यदि हम में इतना आत्म बल है कि हम शस्त्रों के बिना भी उसके यहाँ खड़े रह सकते हैं और उसकी अन्तर्रात्मा को जगा सकते हैं तो इससे अधिक अच्छा दूसरा कोई उपाय नही है। परन्तु यदि हममें इतना आत्मबल नहीं है या आक्रमणकारी में नैतिकता की कोई भावना ही शेष नहीं है, तो हमको शस्त्रों के द्वारा ही उसका प्रतिकार करना होगा। लेकिन हमारे हृदय में उसके प्रति किसी प्रकार की व कष्ट पहुंचाने की भावना नहीं आनी चाहिये। इसी प्रकार अपराधी को भी दण्ड देना चाहिए, किन्तु दण्ड देते समय हमारी भावना उससे बदला लेने की नहीं उसकी अपराधवृत्ति को दूर करने की होनी चाहिए। हमको उसके साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिये, जिससे कि उसके हृदय में किसी प्रकार की कटुता उत्पन्न न हो। वह अपने अपराध पर स्वयं ही लज्जित हो और भविष्य में कोई अपराध न करे। पश्चाताप् सबसे बड़ा प्रायश्चित है।

हमको हिंसा अथवा अहिंसा इन दोनों में से एक को धर्म के रूप में चुनना है। धर्म सार्वभौम है। ऐसा कभी नहीं होता कि कुछ व्यक्तियों का धर्म हिंसा हो और कुछ का अहिंसा। ऐसी दशा में हमें एक को, केवल एक को ही चुनना पड़ेगा।

अगर हम कुछ समय के लिए हिंसा को धर्म मानने वाले संसार की कल्पना करे। ऐसे संसार का नियम होगा "या तो अन्य जीवों की हत्या करो अन्यथा वो तुम्हारी हत्या कर देंगे।" ('Kill or be Killed') ऐसी स्थिति में प्रत्येक प्राणी एक दूसरे

को कष्ट पहुँचाता हुआ दिखाई देगा। चारों ओर अविश्वास और भय का वातावरण होगा। प्रत्येक प्राणी को प्रत्येक पल अपने प्राण बचाने की चिन्ता लग रही होगी। चारों ओर रुदन व चीत्कार तथा रक्त व मांस के दृश्य ही दिखाई दे रहे होंगे।

इसके विपरीत अहिंसा को धर्म मानने वाले संसार में बिल्कुल उल्टा ही दृश्य दिखाई देगा। ऐसे संसार का नियम होगा—"स्वयं भी जियो और दूसरों को भी जीने दो" (Live and Let Live)। इन नियमों को मानने वाले संसार में सब ओर शान्ति, प्रेम, अभय और विश्वास का वातावरण होगा। प्रत्येक व्यक्ति का हृदय करुणा से परिपूर्ण होगा तथा प्रत्येक व्यक्ति को यही ध्यान होगा कि उसके द्वारा किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुँचे। आप इन दोनों में से कौन से संसार में रहना सबको प्रिय लगेगा ? निःसन्देह अहिंसा के संसार में !

ये सत्य है कि यदि कोई व्यक्ति आम प्राप्त करना चाहता है, तो उसे आम ही बोने पड़ेंगे। नीम बोकर कोई भी व्यक्ति आम प्राप्त नहीं कर सकता। इसी प्रकार यदि हमें सुख प्राप्त करना है तो पहले हमें सुख का ही वृक्ष लगाना होगा। दूसरों के प्रति अहिंसक भाव रखने होंगे।

वास्तव में अहिंसक आचरण धर्म ही नहीं है, यह जीने की कला है, जिससे हमें स्वयं को भी सुख मिलता है और दूसरों को भी। अहिंसा परस्पर सहयोग तथा सह अस्तित्व को जन्म देती है।

अपरिग्रहः—भगवान महावीर ने बतलाया है कि अहिंसा का पालन करना तो धर्म है ही। परन्तु जो प्राणी अपने पूर्व उपार्जित पापों के फलस्वरूप कष्ट पा रहे हैं, उनके कष्टों को दूर

करना और उनको कम करने के प्रयत्न करना भी धर्म है। दूसरों के कष्ट दूर करने के लिए हमको कुछ त्याग करना पड़ता है। अपने समय का त्याग, अपने धन का त्याग, व अपने सुख का त्याग। जैसे किसी रोगी व्यक्ति की सेवा करना, उसको अपने धन से दवा दिलाना, इसी प्रकार भूख से कोई व्यक्ति व्याकुल हो उसको भाजन खिलाना, कोई व्यक्ति किसी कारण से भयभीत हो रहा हो, उसकी सुरक्षा का प्रवन्ध करना। इन सब कार्यों के लिए हमें अपना समय व धन देना पड़ता है तथा अपना सुख छोड़ना पड़ता है। यह सब त्याग के अन्तर्गत आता हैं। इस त्याग की भावना को पुष्ट करने के लिए भगवान महावीर ने परिग्रह परिमाण व्रत का उपदेश दिया। उन्होंने कहा है कि अपनी आवश्यकताओं को कम से कम करते जाओ। अपनी धन संग्रह की लालसा पर अंकुश रख दो, उसको किसी सीमा में बांध दो क्योंकि—

"इच्छा आकाश के समान अनन्त है।" इस प्रकार सीमा बाँध लेने से हमारी लालसा कम होती जायेगी और हम एक सीमा तक ही लौकिक कार्य, व्यापार, आदि करेंगे और अपना बचा हुआ समय व धन दूसरों का उपकार करने और अपनी आत्मा की उन्नति में लगा सकते हैं। यही नहीं इसके फलस्वरूप उपलब्व वस्तुओं का वटवारा भी अधिक से अधिक व्यक्तियों में हो सकेगा। अर्थ यह है कि अगर भगवान महावीर के इस उपदेश का पालन किया जाये तो आज जो वर्गसंघर्ष हो रहा है वह स्वयंमेव ही दूर हो जायेगा। इसलिए ही भगवान महावीर ने कहा है कि—

"कामनाओं का अन्त करना ही दुःख का अन्त करना है।"

तात्पर्य ये कि संसार में किसी भी व्यक्ति की तृष्णाओं और इच्छाओं की कोई सीमा नहीं है। हमारी एक इच्छा पूरी नहीं हो

पाती कि अन्य अनेक नई इच्छाएँ आकर खड़ी हो जाती हैं। यही दशा तृष्णाओं की भी है। यदि आज हमारे पास पचास हजार रुपया है तो हम एक लाख पाने की तृष्णा रखते हैं और जब एक लाख हो जाता है तो दस लाख पाने की तृष्णा हो जाती है। इस प्रकार इच्छाएँ व तृष्णाएँ अनन्त है। अपनी इन तृष्णाओं की पूर्ति के लिए हम तरह-तरह के अन्याय व अत्याचार करते हैं और अनुचित साधनों का प्रयोग करते हैं। ऐसा करते समय हम इस बात की थोड़ी भी चिन्ता नहीं करते कि हमारे इन कार्यों से अन्य व्यक्तियों तथा पशु-पक्षियों को कितना कष्ट हो रहा है। विडम्बना तो यह है कि यह सब अन्याय व अत्याचार करने के पश्चात् भी यह निश्चित नहीं होता कि हमारी सभी तृष्णाएं व इच्छाएँ पूरी हो ही जायेगी।

इन अन्यायों तथा तृष्णाओं के फलस्वरूप साधनों के लिए व्यक्तियों में वर्ग संघर्ष का जन्म होता है। परिणाम में यह होता है कि न हम सुख शान्ति को प्राप्त कर सकते हैं और न अन्य व्यक्ति ही। क्योंकि—"प्रमत्त पुरुष धन के द्वारा न तो इस लोक में अपनी रक्षा कर सकता है और न परलोक में।" संसार के अधिकांश युद्ध इन्हीं तृष्णाओं की पूर्ति के लिए लड़े गये और उनके फलस्वरूप जन व धन की कितनी हानि हुई, उनका लेखा-जोखा करना असंभव है। यदि हम अपनी तृष्णाओं व इच्छाओं पर अंकुश लगाये और संतोषपूर्वक जीवन यापन करे तो इससे केवल हमको ही सुख व शान्ति नहीं मिलेगी अपितु अन्य व्यक्तियों को भी सुख व शान्ति मिलेगी। इसलिए ही भगवान महावीर ने प्रत्येक व्यक्ति को अपनी तृष्णाओं व इच्छाओं पर अंकुश लगाने और अपनी आवश्यकताओं को कम करते हुए संतोषपूर्वक जीवन-यापन करने का उपदेश दिया है "विश्व के सभी प्राणियों के लिए

परिग्रह के समान दूसरा कोई जाल नहीं, बन्धन नहीं।" भगवान महावीर ने वस्तुतः आज की उठती हुई मांग 'समाजवाद' को ही लागू करने पर जोर दिया था। वे कहते हैं—"वस्तु के रहे हुए ममत्वभाव को परिग्रह कहा जाता है। अर्थात् केवल उन्हीं वस्तुओं की आकांक्षा करनी चाहिए जो उचित हो।"

सत्य—"सत्य ईश्वर है !" सत्य व्रत है, अहिंसा के गर्भ में सत्य की सत्ता है। जो असत्य का आचरण करेगा, मन, वाणी से, काया से, वह चोट पहुँचायेगा स्वयं को तथा अन्यों को। यह हिंसा होगी। हिंसा के त्याग में असत्य का त्याग गर्भित है। सत्य का पक्षधर क्षमावान, निर्लोभ, उपहास की चिन्ता न करने वाला निर्भीक आत्मविश्वासी, दृढ़ संकल्पी और स्थितप्रज्ञ होगा। वह उत्तेजित नहीं होगा, स्थित व संदर्भ की खोज करेगा। सदा हितकारी वचन बोलेगा।" क्योंकि—"इस लोक में सत्य ही सार तत्व है। यह महासमुद्र से भी अधिक गम्भीर है।" वह प्रलोभन या लालच में नहीं फंसेगा। कुछ लोग उसकी हँसी उड़ायेंगे तो भी वह अपने निर्धारित मार्ग से विचलित नहीं होगा। सत्योन्मुख बना रहेगा। क्योंकि "मनुष्य लोभ में आकर झूठ बोलता है।" इसलिए "हे पुरुष ! तू सत्य को पहचान।" "जो मतिमान् साधक सत्य की आज्ञा में सदा तत्पर रहता है वह मृत्यु के प्रवाह को पार कर जाता है।" वह यही कहेगा जो "है", जो नहीं है, नहीं होना चाहिए, उसे नकार देगा।

यहां इस नकारने में भी उसकी जीवन पद्धति अनेकान्तवादी होगी। नकारने में अविचल, जानने में अनेकान्तवादी। सत्य जानना। सत्य कहना और सत्य को अपने प्राणों में आत्मसात् होने देना कोई आसान काम नहीं, यह बड़ी दुर्गम डगर है। सत्य-

व्रत मन, वाणी, कर्म से तीन नहीं सदैव एक होता है। भगवान महावीर ने कहा है कि—"अपनी आत्मा के द्वारा सत्य की खोज करो।" सत्य व्रत भी है और धर्म भी। निर्दोष और वास्तविकता के मनन, कथन और आचरण को सत्य कहा जाता है। इसका समावेश स्वभावतः क्षमा, मार्दव, आर्जव, और शौच में हो सकता है यद्यपि इसकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता है। सत्य के लिए चाहिए साहस, उसकी अनुभूति में, उसकी अभिव्यक्ति में। जिसका मन सरल नहीं, सत्य का उससे कोई रिश्ता नहीं। सत्य केवल कहने सुनने की चीज नहीं है, वह सबसे पहिले अनुभूति की, फिर आचरण की और फिर अपनी ओर से बिना डंका बजाये दूसरों को देखने की चीज है।

ब्रह्मचर्य—ब्रह्मचर्य अन्तर्मुख विकास का शिखर है। यहाँ पहुंचकर साधना इतनी प्रखर हो जाती है कि आत्मा न पुरुष होती है, न स्त्री; उसकी दृष्टि यौनातीत होती है। चरित्र के इस समत्व को ब्रह्मचर्य कहते हैं। ब्रह्मचर्य दसवां धर्म और चौथा व्रत है। यह नौ धर्मों का योगफल है। इसमें क्षमा से आकिंचन्य तक के नौ धर्मों का सार समाया हुआ है। जिसमें ये नौ है, उसके पास दसवाँ स्वयं है। ब्रह्मचर्य की चित्त पर जो मुद्रा है, वह समत्व की है। चित्त को "आत्मवतसर्वभूतेषु"—"सारे प्राणी मुझ जैसे है" की स्वस्थ भूमिका में ले आने के लिए जैन धर्म ने सम्यक-चारित्र के समीचीन विकास की बात कही है।

ब्रह्मचर्य के अन्तिम पड़ाव पर पहुँचा साधक मिट्टी, सोना, महल, झोंपड़ा, सुख-दुःख, स्त्री-पुरुष किसी में फर्क नहीं कर पाता, उसकी दृष्टि निर्मल होती है।" ब्रह्मचर्य—उत्तम तप, नियम, ज्ञान, दर्शन, चरित्र, सम्यक्त्व और विनय का मूल है।" इस तरह ब्रह्मचय समरसता का सर्वोत्तम रूप है। तभी तो कहा गया है

कि "तपो में तप ब्रह्मचर्य है।"—"जो व्यक्ति दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करता है, उस ब्रह्मचारी के चरणों में देव, दानव, गन्धर्व यक्ष, राक्षस आदि सभी नमस्कार करते हैं। सबसे पहले श्रद्धा, फिर ज्ञान, फिर चरित्र, उत्तरोत्तर, उत्तमोत्तम! यह है जैनधर्म का नदी की धार की तरह गतिमान रूप।

तप—"तप से आत्मा भाव विशुद्धि को प्राप्त करता है।" तप कर्मक्षय का प्रमुख साधन है। आंच से मल पिघलता है, मैल टूटता है। संयम की आंच पर चढ़ा मन निर्मल हो उठता है। उसकी खोट समाप्त हो जाती है, कालुष्य धुल जाता है। कर्म के अस्त्रव पर जो रोक लगती है, लगायी जाती है ओर उसकी निर्जरा के लिए जो कठोर साधना की जाती है, वह तप है। "तप की महिमा प्रत्यक्ष में दिखलाई देती है।" जैन धर्म में स्वाध्याय भी तप है। "करोड़ों भवों के संचित कर्म तपश्चर्या से निर्जीण-नष्ट हो जाते हैं।" वह तपों का सम्राट है। ज्ञान के आँच जैसी खरी कोई आंच नहीं। स्वाध्याय की भट्टी पर चढ़ा मन निर्मल-निष्कलुष हुए विना नीचे नहीं आता। स्वाध्याय ज्ञान को नित नया निखार देता है, इसलिए उसे तपों में सर्वश्रेष्ठ तप कहा गया है। "आत्मा को शरीर से विलग जानकर भोग-लिप्त शरीर को तपश्चर्या के द्वारा धुन डालना चाहिए।" क्योंकि "इच्छा निरोध—तप से मोक्ष की प्राप्ति होती है।" तप के द्वारा अपने को जीर्ण करो, भोग वृति को जर्जर करो।"

अचौर्य—जो दूसरों का है, विना अनुमति के उसे लेना चोरी है और जो स्वयं का प्राप्य है उसे हासिल न करना अज्ञान है। जो अनीतिमय या अपहृत है, उसको स्वीकार करना, चोरी करने के समान है। अचौर्य समत्व का मार्ग है। समाजवादी समाज-

रचना की आधारशिला है। समाजवाद 'प्राप्य' की सुसंगत व्यवस्था है पूंजी या साम्राज्यवाद में 'प्राप्य' की विषमता है। जैनधर्म अचौर्य के आचरण की बात करता है। वह चाहता है कि जो जिसको प्राप्त है, वह उसे मिले। किसी को भी कम या अधिक नहीं मिलना चाहिए वल्कि ये तो कहता है कि व्यक्ति स्वयं ही 'अपनी' का वितरण समानता के आधार पर करें। जैन-धर्म में स्पष्ट है कि मुनि वहाँ ठहरेगा, उतने में ठहरेगा, इस तरह ठहरेगा कि उसके ऐसा करने से किसी के हक को क्षति न पहुँचती हो। गृहस्थ व्यक्ति से भी जैन धर्म यही अपेक्षा रखता है। अचौर्य भी अहिंसा का एक भाग है, वह उसमें वना हुआ है।

अहिंसा उतनी ही नहीं है जितने इसके शाब्दिक अर्थ है। इसके शाब्दिक अर्थ को नहीं, भाव को लेना है फिर प्रत्येक प्रश्न अपना समाधान खुद वना लेगा।

---

३. धर्म और नई पीढ़ी

मनुष्य में चिन्तन, मनन एवं अनुशीलन की शक्ति अन्य सांसारिक प्राणियों से अधिक होती है, प्रत्येक मानव में ज्ञान-पिपासा होती है। प्राचीन ऋषि-मुनियों ने विद्या के सम्बन्ध में कहा है— "विद्या वह है, जो मनुष्य को अज्ञान से मुक्त करती है, उसे अन्धकार से निकालकर प्रकाश दिखलाती है। अतः विद्याध्ययन का उद्देश्य दुर्गुणों से मुक्ति पाना है। वस्तुतः शिक्षा ही वह अमोघ साधन है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी सर्वांगीण उन्नति कर सकता सकता है। सामाजिक, नैतिक व धार्मिक स्तर बढ़ाने के लिए प्रत्येक मानव के लिए शिक्षा, एक महत्त्वपूर्ण अर्थ रखती है।" आज के प्रगतिशील युग में प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करने लगा है। जब व्यक्ति शिक्षित हो जाता है, मन से, वचन से, कर्म से, तब उसका दृष्टिकोण भी परिवर्तनयुक्त होगा, इसमें कोई संदेह नहीं। ये दृष्टिकोण परिवर्तन केवल सामाजिक और नैतिकता के साधनों के लिए नहीं होता वरन् धर्म के मामले में भी ये लागू होता है।

नयी पीढ़ी के सोचने-समझने का दृष्टिकोण पुराने दृष्टिकोण से सर्वथा भिन्न है। इसका मतलब ये नहीं कि वो उन पुरानी मान्यताओं और निर्देशों की अवहेलना करना चाहते हैं या उनको समाप्त कर देना चाहते हैं वरन् वह उस पुराने दृष्टिकोण में आवश्यक परिवर्तन अवश्य करना चाहते हैं। वह रूढ़िवादी नहीं बनना

चाहते। आज का युग विज्ञान का युग है अतः आज की पीढ़ी धर्म को कसौटी पर खरा उतरने के बाद ही स्वीकार कर सकती है। ये सब क्यों हुआ? कैसे हुआ? ये बातें अत्यन्त विचारणीय बन गई है। नयी पीढ़ी क्या केवल शिक्षा के कारण, विज्ञान के बढ़ते चरणों के कारण अपने दृष्टिकोण को बदलकर धर्म का नया अर्थ बनाना चाहती है? इसका उत्तर पाने के लिए हमें समाज के उन अगुवा कहलाने वाले 'विशिष्ट' व्यक्तियों का विश्लेषण करना बहुत जरूरी है।

अधिकांश धर्म-प्रचारकों ने मानवजाति को केवल समाधि, कथा, कीर्तन तथा नाना प्रकार की पूजा अर्चना की ओर प्रेरित किया। हो सकता है कि उन महापुरुषों के ये प्रयास आत्म-ज्ञान की प्राप्ति की ओर प्रथम कदम हो। वास्तविकता भी कुछ ऐसी लगती है क्योंकि आज से पहले ज्ञान की प्राप्ति कोई साधारण बात नहीं थी। इसकी जिज्ञासा रखने वालों को गुरजनों द्वारा निर्धारित कई कठिन परीक्षाओं से गुजरना पड़ता था। तप-त्याग का जीवन व्यतीत करने पर भी हजारों में से किसी एक भाग्य-शाली को ही ज्ञान की प्राप्ति हो पाती थी। कई अधिकांश जिज्ञासु तो परीक्षा देते-देते ही समाप्त हो जाते थे। इसीलिये उत्तराध्या-यन सूत्रम में कहा गया है :—

धम्मज्जियं च ववहारं, बुद्धेहायरियं सया।
तमायरंतो ववहारं, गरहं नाभिगच्छंई॥

मूलार्थः—"जो व्यवहार धर्म से उत्पन्न हुआ है और तत्ववेत्ता आचार्यों ने जिसका आचरण किया है उस व्यवहार को आचरण में लाने वाला पुरुष संसार में कभी निन्दा को प्राप्त नहीं होता।

इसी प्रकार ही प्राचीनकाल में तथाकथित महात्माओं की

ओर से प्रभुप्राप्ति की इच्छा रखने वालों पर, खाने, पीने, पहनने तथा संसार में रहने के लिए इतने प्रतिबन्ध होते थे कि बेचारा जिज्ञासु वास्तविकता को भूलकर केवल उन बन्धनों में ही डूबकर रह जाता था। शायद इसी कारण आज के भक्तजन और शांति के इच्छुक भी वास्तविकता से दूर केवल बाहरी रख-रखाव तथा पूजा विधियों के बन्दी बने हुए हैं। आज का युग विकास का युग है और विकसित हुआ मनुष्य का मस्तिष्क उन धारणाओं और रूढ़ियों को इतनी सरलता से स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं क्योंकि उन्हें पुरानी लकीरों पर चलने की प्रेरणा दी जा रही है। हमें अन्ध-विश्वास नहीं करना चाहिए। इस विश्व को नयी पीढ़ी द्वारा ही काफी समय बाद एक ऐसा मस्तिष्क मिला है जो खोज करना चाहता है हर सिद्धान्त के प्रतिपादन से पहले उसको कसौटी पर कसकर देखना जानता है, तब ये कैसे उम्मीद की जाये कि वह उन पुरानी लकीरों को बिना कसौटी के स्वीकार कर लेगा? हालांकि आज का व्यक्ति सत्यता चाहता है, मनःशक्ति चाहता है पर वह रूढ़ियों द्वारा प्राप्त हुई नहीं! कभी समय विकास का होता है और कभी विश्वास का होता है। ये समय विकास का है तब निश्चय ही अन्य के साथ-साथ धर्म का भी विकास होगा पर रूढ़िता जैसे धर्म का नहीं एक सच्चे धर्म की खोज अवश्य होगी। अब सम्प्रदायों की सम्प्रदायिकता खतरे में आ गयी है। हमारे पुराने लोग सम्प्रदायों के नाम पर लड़ते हैं लेकिन नयी पीढ़ी लड़ती नहीं अपने विचारों को कार्यरूप देती है। नया लड़ता नहीं, खोज करना चाहता है। नया व्यक्ति हर बात को अनुभव की कसौटी पर कस लेना चाहता है। पुराने व्यक्तियों के विचार भी पुराने हो गये हैं उनमें घुन लग गयी है और वहीं व्यक्ति दूसरे सम्प्रदाय अथवा दूसरे धर्म की बात को मानना अथवा पढ़ना बुरा

समझते हैं, उसे अधर्म कहते हैं। पुराने अपने पुराने निर्मित किए हुए मकान, दुकान यहाँ तक कि कोई वस्तु बदलना नहीं चाहते, पुरानों को पुरानों का मोह होता है पर नयी पीढ़ी नया निर्माण करना चाहती है हर क्षेत्र में चाहे वो धार्मिक हो, सामाजिक हो अथवा आर्थिक या नैतिक हो।

जहाँ ये बातें आज के पक्ष में जाती हैं वहीं कई ऐसी बातें भी हैं जो उसके विपक्ष को सबल बना रही हैं। आज की दुनिया वालों को भगवान से कहीं अधिक अपने खान-पान और पहरावे का ध्यान है। वे ऐसे राही हैं जो भूलकर रास्ते के झगड़ों में उलझकर रह गये हैं। यह सब कुछ होते हुए भी हमको अपने पूर्वजों का इसलिए तो आभारी होना ही पड़ेगा कि वे हमारे लिये धार्मिक ग्रन्थों के रूप में प्रज्वलित दीप छोड़ गये हैं। इनके प्रकाश में चलकर अब भी जिज्ञासु आत्म-ज्ञान की प्राप्ति कर सकते हैं। पर यह आज का दुर्भाग्य है कि इन महान ग्रन्थों के टीककारों और व्याख्या करने वालों ने अपनी विद्वता व बुद्धिमानी का ऐसा जादू चलाया है कि सभी धार्मिक ग्रन्थ मानने को नहीं बल्कि पूजने की वस्तु बन गये हैं। ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं जो इन महान् ग्रन्थों के पाठ और पूजा को ही अपने जीवन का महान् आदर्श और धर्म समझते हैं। अपने आपको आधुनिक विचारों का कह-लाने वाले भी इस महामारी से अछूते नहीं रह सके। क्या यह बात आज के मानव के लिए महत्त्वपूर्ण नहीं कि संसार के लोग क्लबों, सिनेमाघरों तथा मदिरालयों आदि में तो बिना किसी झिझक के क्षणिक आनन्द प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु धर्म-स्थानों पर किसी दूसरी जाति या अनुयायी को देखकर उनकी आंखें लाल हो उठती हैं। किसी को किसी के केश अच्छे नहीं लगते, तो कोई किसी की सिर पर रखी हुई चोटी देखकर नाक सिकोड़ने लगता

है और किसी का मन किसी के सिर पर रखी टोपी को देखकर सटपटाने लगता है। जबकि वस्त्र तो तन ढांपने की वस्तु है। इन्हें हर कोई अपनी सुविधा व प्रथा के अनुसार पहनता-ओढ़ता है। लेकिन धार्मिक लोग इस विषय में भी नुकताचीनी करने से बाज नहीं आते और तो और आज के धार्मिक कहलाने वालों को एक-दूसरे का खाना-पीना भी नहीं सुहाता। आजकल केवल पानी को छानकर या एक चींटीं को जीवनदान देकर ही धर्म नहीं कहलाता। एक तालाब की मेंढ़ पर एक बच्चा बैठा है और एक चींटीं, दोनों का जीवन खतरे में है, अभी लहर आएगी और दोनों को बहा ले जायेगी, ऐसे में किसको बचाया जाय? अगर बच्चे को बचाया जाता है तो चींटी मर जाती है और अगर चींटी को बचाया जाय तो बच्चा लहरों में बह जायेगा। तब निश्चय ही हृदय बच्चे को बचाने के लिए कहेगा। और आज के युवक को यही शिकायत है कि पुराने लोग चींटी पर तो ध्यान देते हैं पर बच्चे पर नहीं। सभी प्राणियों के साथ मैत्री का नाम है धर्म। परन्तु विषम-अवस्था में किसी विशेष को प्राथमिकता देना भी तो धर्म का अनन्य अंग है। वस्तुतः हृदय ही धर्म का केन्द्र स्थल है। धर्म रूढ़ि नहीं विज्ञान है। मानव प्रकृति के विविध बाह्य सौंदर्य रूपात्मक से प्रभावित होकर साहित्य सर्जना करता है और उसके आन्तरिक रहस्य के प्रति जिज्ञासु बनकर विज्ञान की ओर आकृष्ट होता है। विज्ञान कभी झूठ नहीं बोलता। वस्तुतः संसार के ज्ञान और बाह्य सौंदर्य को समान रूप से प्राप्त करने के लिए विज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। इस तरह धर्म व विज्ञान दो अलग पथों के पथिक हो गये हैं। एक का आधार हृदय दूसरे का मस्तिष्क है। धर्म का सम्बन्ध आत्मा, अनुभूति तथा विश्वास से, और विज्ञान का बुद्धि, तर्क एवं यथार्थ से है। धर्ममनुष्य को

पाप-पुण्य की व्याख्या, कर्त्तव्य पालन और नैतिकता सिखाता हैं किन्तु विज्ञान का पाप पुण्य से कोई सम्बन्ध नहीं। वह तो मानव को अच्छी एवं बुरी आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन जुटा देता है। धर्म मनुष्य में दया, उदारता, त्याग व प्रेम के भाव उत्पन्न करता है, धर्म व्यक्ति एवं समाज की प्रगति का उस समय बाधक बन जाता है जब मनुष्य अन्धविश्वासी, रूढ़िवादी, एवं प्रतिक्रियावाद व साम्प्रदायिकता को अपना लेता है। धर्म विश्वास का पोषक होता है और विज्ञान तर्क-वितर्क को प्रोत्साहन देता है।

आज विज्ञान के फलस्वरूप समाज व मानव पर से धर्म का नियन्त्रण प्रायः समाप्त-सा हो गया है। आज मनुष्य धर्म को अनावश्यक समझने लगा है, उसे ईश्वर के आस्तित्व में, शक्ति में सन्देह होने लगा है, किन्तु विज्ञान धर्म के आस्तित्व को समाप्त नहीं कर सकता, जब तक आत्मा अमर है, परमात्मा पर विश्वास भी बना रहेगा। जिस तरह घर बदल देने से या कपड़े बदल देने से व्यक्ति नहीं बदल जाता उस प्रकार देह को छोड़ने से जीव भी कभी नहीं मरता। ये अटल सत्य है। वस्तुतः विज्ञान केवल धर्म के वाह्यडम्बरों एवं अन्धविश्वासों का खण्डन करता है, वह शुद्ध एवं सात्विक धर्म की हानि नहीं कर सकता। मानव की आत्मा शान्ति की पुजारिणी है और उसे यह शान्ति धर्म द्वारा ही प्राप्त हो सकती है, विज्ञान द्वारा नहीं। इसके लिए अन्धविश्वासों और आडम्बरों को तोड़कर धर्म के सच्चे स्वरूप की आवश्यकता है। विज्ञान केवल खोज करता है। सत्य क्या है? वस्तु का सही रूप कौन सा है? इस खोज के द्वारा ही सत्य का ज्ञान हो सकता है और वही सत्य। धर्म है। वस्तुतः विज्ञान अधिकतर विलास के साधन जुटाता है और धर्म विलास को अपना शत्रु मानता है यद्यपि वज्ञान और धर्म अलग है, किन्तु दोनों का सन्तुलित रूप ही मानव

को चरम-विकास की स्थिति पर पहुँचा सकता है।

अतः नयी पीढ़ी का दृष्टिकोण धर्म को नया और सच्चे अर्थ में स्वीकार करना है जिसमें वाह्याडम्वर नहीं सच्ची शान्ति होगी। जो केवल रूढ़ियों पर नहीं आध्यात्मिकता का सच्चा पथ प्रदर्शक होगा।

"भगवान महावीर और औषधि विज्ञान"

भारत के धर्मों में जैन धर्म ही एक ऐसा धर्म है जो मांसाहार के निषेध पर बहुत जोर देता है। जैन धर्म के अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान महावीर को विश्व का कौन व्यक्ति नहीं जनता, वे बड़े तपस्वी थे, अहिंसा की साक्षात् मूर्ति थे। भगवान महावीर अहिंसा के पुजारी थे। अहिंसा ही उनका जीवन-धन था। उनकी मौलिक अहिंसा से उनके शासन में प्रवेश करने वाला इतना प्रभावित होता था कि वह मांस-भक्षण का पूर्ण रूपेण त्याग कर देता था। इस कथन के समर्थन में अनेक दृष्टान्त जैन आगमों व बौद्ध त्रिपिटकों में पाये जाते हैं। यह प्रमाणित होने पर भी आजकल एक आपत्ति उठाई जा रही है कि भगवान महावीर ने मांसाहार किया था। इस विचित्र कल्पना की समाप्ति करना वास्तविकता की स्थापना करना ही नहीं वरन् एक आवश्यकता की पूर्ति करना है। जैनागमों में स्थान-स्थान पर अहिंसा का सुनहरा उपदेश मिलता है। फिर भला अहिंसा प्रधान शास्त्रों में मांसाहार को घुसने का स्थान कैसे मिल सकता है? दया-मुख जैन धर्म में मांसाहार की कल्पना भी नहीं हो सकती।

वस्तुतः जो सागर के ऊपर ही तैरते रहते हैं, उनको शंख व घोंघे आदि तो हाथ लग सकते हैं, किन्तु उनको मोती नहीं मिल सकते। मोतियों को पाने के लिए सागर में गहरे उतरना पड़ता है। शास्त्र भी एक गहरे से गहरा समुद्र है। कोई-कोई ही इसे पा सकता है। जो लोग शास्त्रों में तैरते हैं उसको इनके रहस्य नहीं

मिला करते। शास्त्र सागर के भाव-मोती को पाने के लिए उसमें गहरे जाना चाहिए।

जिस देश-काल में शास्त्र गुन्थे जाते हैं, तात्कालीन वर्णन शैली और लेखन-पद्धति का भी साथ ही गुन्थन होता है। भाव में भी परिवर्तन चलता रहता है। कभी कोई शब्द प्रयोग की सीमा में आ जाता है तो कभी कोई शब्द प्रयोग की परिधि से निकल जाता है। किसी देश-काल में कोई शब्द किसी अर्थ को लेकर विशेष प्रचलित होता है किन्तु देश-काल के बदलते ही वह लोगों की जबानों से उतर जाता है, उसका स्थान कोई और शब्द आकर घेर लेता है।

यह शब्द संसार बड़ा विचित्र है। शब्द अपने में अनेक अर्थ छिपाये रखता है, शब्द अपने सामान्य (लोक-प्रसिद्ध) और विशेष अर्थ को लेकर भी प्रयुक्त होता है। इस कारण विशेषज्ञों को हर शब्दों पर अनेक पहलुओं से विचार करना चाहिए, तभी उसके सही भाव का पता चल सकता है।

विषय का वास्तविक वर्णन भगवती सूत्र के पन्द्रहवें शतक में है—

"जिस समय भगवान् महावीर मेंढ़िक ग्राम के शाल कोष्ट उद्यान में पधारे, उस समय उनके शरीर में तेजो लेश्या की वजह से पित्त-ज्वर का जोर था। रोग ने भयंकर रूप धारण किया हुआ था। ऐसी स्थिति को देखकर परमतावलम्बी कहने लगे कि भगवान् महावीर की छः मास की छद्मस्थ अवस्था में ही मृत्यु हो जाएगी। भगवान् का परम अनुरागी मुनि 'सिंह' को जो कि मालुक वन में तपस्या कर रहा था, जब इस लोक चर्चा* का पता चला तो वह अत्यन्त क्षुब्ध हुआ और अपने मन में इस बात की कल्पना

* भगवती सूत्र १५वां शतक।

करके कि कहीं परमतावलम्बियों का कथन सच न हो जाय, दुःखी होने लगा। भगवान में तुरन्त मुनि सिंह को बुला कर कहा—वत्स सिंह ! तू दुःखी मत हो, मेरी मृत्यु छः महीने में नहीं होगी। मैं सोलह (१६) वर्ष तक तीर्थङ्कर की अवस्था में जीवित रहूंगा। तथापि, यदि तुम मेरे इस रोग से दुःखी हो तो एक काम कर। मेढ़िक ग्राम में गाथापति की पत्नी 'रेवती' रहती है। उसके वहां चला जा। वहाँ रखी पुरानी औपधि ले आना। मुनि सिंह भगवान की आज्ञा पाकर आनन्दित होता हुआ रेवती के घर गया और औषधि ले आया। औपधि सेवन से भगवान का रोग शान्त हो गया।

२६०० वर्ष पूर्व भगवान् महावीर द्वारा भाषित मागधी-प्राकृत के इन शब्दों के अर्थ या भावार्थ को अनेक प्रकार से संस्कारित स्वकालीन प्रचलित भाषा के शब्दों का पर्याय बना लिया जाय तो यह सरासर भूल होगी। ऐसी भूलों से बचने के लिए हमें, जैन सूत्रों की रचना और अर्थ-पद्धति, प्राकृत व संस्कृत के अनेकार्थ शब्द, वर्तमान काल के अनेकार्थ शब्द, औषधि सेवन करने वाले तथा जुटाने वाले का जीवन-संस्कार, रोग, औपधि, और नियमानियम के विज्ञान आदि का पूरा विवेचन अवश्य जरूरी है।

जैन आगमों की रचना और अर्थ शैली का इतिहास इस प्रकार मिलता है—

(आ० श्री हरिभद्र सूरि कृत 'दश वैकालिक सूत्र टीका द्वारा उद्धृत अर्थ)—' आर्यवज्र स्वामी (विक्रम सँ० १७४) तक जिनागम के चार-चार अनुयोग होते थे। गया, पर्याय और अर्थ अनन्त होते थे, सामान्य व विशेष, मुख्य व गौण तथा उत्सर्ग व अपवाद द्वारा सापेक्ष अनेक अर्थ होते थे। इसके पश्चात् आर्य-

रक्षित द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, चरण करण अनुयोग अथवा धर्म कथा अनुयोग ऐसा एक-एक ही अर्थ रहा।

कहने का अभिप्राय यह है कि एक-एक अनुयोग वाला अर्थ शेष रहने के कारण किसी-किसी स्थान पर यदि अर्थ-भ्रम दिखाई दे तो यह संभव है। इस अर्थ-भ्रम को दूर करने के लिए तत्कालीन अर्थ-शैली का ज्ञान आवश्यक है।

प्राकृत और संस्कृत भाषा में वनस्पतियों के कई ऐसे नाम हैं, जिनसे सामान्यतः विभिन्न प्राणियों का बोध होता है। जैसे—बिल्ली (गा० १९), ऐरावण (२१) गयमारिणी (२२)

ऐरावण=लकुचफल

रावण=तंदुक फल

गोजिह्वा=गोभी

चतुष्पदी=भिण्डी

मृगनाभि=मुश्क

मांसफल=तरबूज

कुक्कड़ वेल=(गुजराती औषधि)

अंडा=आंवला

मार्जार=पित्त ज्वर नाशक औषधि

रंभा=केले का पेड़

राम=चिरायता। लक्ष्मी=कालीमिर्च

दास=हल्दी। सीता=मिश्री

विष्णु=पीपल। शिव=हरड़

कृष्ण=गजपीपल। रावण=इन्द्रायण तुहरा

(अष्टाभिधान शब्द कोश द्वारा उद्धृत)

भाव-प्रकाश निघण्टु में प्राणी वाचक और प्राणी नाम सूचक अनेक वनस्पतियों का वर्णन है, जिनमें से कतिपय ये है—

(१) हरितक्यादि वर्ग में—हरित की जीवन्ती=अस्थिमती, पूतना (६से११) वैदेही, पिप्पली, (५३) गजपिप्पली (६७) चित्रको व्याल (६६)।

(२) कर्पूरादि वर्ग में—पतंग (१८-१६) जटायु कौशिक (३२) नाग (६६) गौरी, गोरोचना—(७६) ब्राह्मणी देवी मरून्माला (१२५)।

(३) गडूच्चादि वर्ग में—जीवन्ती (७) नागिनी (१०) जया, जयन्ती (२४) सिंही (३६) मांस रोहिणी (१३३) मर्कटी (२१६) अस्थि शृंखला (२२६)।

(४) पुष्प वर्ग में—पद्मनी (७) पद्मा (१५) महाकुमारी (२२) नैपाली (२३) गणिका (२८) सहचर दासी (५०, ५१) गौरी (६१)।

(५) फल वर्ग में—कामांग (१) कामराज पुत्र (२२) रम्भा (३१) दन्तशठ (६०, १३४, १४०) वानप्रस्थ (६४) गोस्तनी (११०)।

(६) वटादि वर्ग में—जटि (११) अश्वकर्ण (१६२०) अजकर्ण (२१) अर्जुनवीर (२७, २७) पुत्रजीव (३६, ४०) कच्छप (४४) याज्ञिक (४८)।

(७) शाक वर्ग में—शफरी (२४) कुक्कुटः शिखी, (३१) गोजिव्हा (३६) वाराही (१०७)।

अनेकार्थ वर्ग में—अजशृंगी, मेष शृंगी, कर्कट, शृंगीच, ब्राह्मी-ब्राह्मणी, भार्ङ्गी स्पृक्काच। अपराजिता=विष्णु कान्ता, शालीपर्णीच, पारातपदी, ज्योतिष्मती काक जंघी च। गोलोमी= श्वेत दुर्वा वचा च। पद्मा=पद्म चारिणी, भार्ङ्गी च श्यामा सारिवा प्रियागुश्च। ऐन्द्री=इन्द्र वारुणी, इन्द्राणी च। सिंह=बृहती वासा च। राज-पुत्रिका=रेणुका चाति च। कृष्णा=पिपली,

कालाजाजी, नीली च। वदरा=वाराहि आदि।

वर्त्तमान काल के कुछ अनेकार्थ शब्द

आजकल के भी कई प्रचलित शब्द ऐसे हैं, जिनका अर्थ, प्राणी और वनस्पति के प्रसंग में होने पर, विभिन्न हो जाता है। जैसे—

	शब्द	प्राणी बोधक अर्थ	वनस्पति बोधक अर्थ
(१)	कुकड़ी	=मुर्गी (गुजरात)	=भुट्टे
(२)	गलगल	=गुट्टार पक्षी	=बिजौरा
(३)	चील	=चील पक्षी (उत्तर प्रदेश)	=चील की भाजी
(४)	गोल्होड़ी	=गिलहरी (उत्तर प्रदेश)	=शाक
(५)	लज्जालु	=स्त्री	=छुइमुई, पौधे की जाति (गुजरात)

औषध सेवन करने वाले और जुटाने वाले का जीवन-संस्कार—

इस औषधि की आज्ञा देने वाले भगवान महावीर हैं और लाने वाले पंचमहाव्रत धारक महातपस्वी मुनि श्री सिंह हैं, जो मनसा वाचा कर्मणा हिंसा के विरोधी हैं। वे अहिंसा के महान् उपदेशक हैं और स्वयं उस पर आचरण करते हैं। भगवान महावीर ने अहिंसा का संदेश दिया साथ-साथ उससे अपने जीवन को भी ओत-प्रोत कर दिया व अहिंसा का पूर्णरूपेण पालन किया। इस कारण आज भी जैन-धर्म में मांसाहार पूर्ण रूप से त्याज्य है। केवल यही नहीं, अहिंसा शब्द मात्र का सामान्य वार्ता में प्रयोग होगा ही जैन-धर्म की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए पर्याप्त है। यह तथ्य भगवान महावीर के अहिंसामय का ज्वलन्त प्रमाण है।

भगवान महावीर की वाणी में मांसाहार का सर्वथा निषेध है जैसे—

"जैन भिक्षुक को यदि कहीं मांस, मछली, अथवा उसके छिलके-आदि होने का पता लग जाय तो वह वहां न जाये।"

"जैन साधु मांस-मदिरा का त्याग करें"।

"जो मांस-मदिरा का सेवन करते हैं, अज्ञानता से पाप करते करते हैं, उनका मन अपवित्र है और वचन भी झूठा है।"

"जीव चार प्रकार के कामों से नरक में जाने के लिए कर्म बांधते हैं। (१) महापाप का आरम्भ; (२) महा परिग्रह (धनादि संग्रह); (३) पंचेन्द्रिय जीव का वध; तथा (४) मुरदे का भक्षण (मांसाहार)।"

"महारम्भ, महापरिग्रह, मांसाहार व पंचेन्द्रिय वध से बांधे हुए कर्म के उदय से नारकी की आयु बँधती हैं।"

"मदिरा पान, मांस मदिरा, गुंडापन आदि से नारकी की आयु का बंध होता है।"

महारंभाए महापरिग्गहियाए, कुणिमाहारेण पंचेन्द्रिय वहेणं नेरइयाउय कम्मासरीराप्पयोग नामाए कम्मस्स उदएणं नेरइयाउय कम्मा सरीरे जाव प्रयोग वन्धे।

(श्री भगवती सूत्र श० ८ उ० ६ सू०)

"मांस दुर्गन्ध वाला है, विभत्स है, शरीर के मलों से बना हुआ है, अपवित्र है और नरक में ले जाने वाला है। अतः त्याज्य है।"

"मांस में क्षणभर में ही अनन्त सूक्ष्म कीटाणुओं का जन्म और विनाश होता है। वह नरक के मार्ग में ले जाने वाला भोजन है। कौन बुद्धिमान ऐसे मांस को खाये?"

"मांस कच्चा हो या पकाया हुआ, उसके हर क्षण निगोद

के जीव उत्पन्न होते हैं।"

"इसके अतिरिक्त एक जगह भगवान् महावीर आह्वान करते हैं—"शराब छोड़ दे, मांस छोड़ दे, विकृत (रस-पुष्ट) भोजन को कम कर, बार-बार कायोत्सर्ग, स्वाध्याय[1] योग में लीन हो जा।" इन पाठों के द्वारा भगवान महावीर के आदर्श अहिंसामय जीवन का और उनके द्वारा प्रदत्त अहिंसा के उपदेश का पूरा-पूरा परिचय मिल जाता है। ऐसी स्थिति में उनको मांसाहारी मानना व कहना तथा लिखना मन का, वाणी का तथा लेखनी का दुरुपयोग करना है।

औषधि प्रदान करने वाली स्त्री का व्यवहारिक जीवन

सिंह मुनि उस औषधि को किसी कसाई के यहाँ से अथवा यज्ञ-स्थल से नहीं लाये थे। वह उसे एक जैन श्राविका के घर से लाये थे जिसका नाम 'रेवती' था।

जैनागम में उस समय रेवती नाम की दो लड़कियों का उल्लेख हुआ है—

(१) एक 'रेवती' थी, राजगृही के महाशतक की स्त्री थी।

(२) दूसरी 'रेवती' थी मेढ़िक ग्राम निवासिनी जैन श्राविका थी।

सिंह मुनि मेढ़िक ग्राम वाली रेवती से उक्त औषध लाये थे। दिगम्बर सम्प्रदाय के विद्वान भी रेवती (मेढ़िक ग्राम वाली) के इस औषधिदान की प्रशंसा करते हैं और तीर्थङ्कर नाम कर्म उपार्जन करने का कारण यही था।

जो श्रेष्ठ श्राविका है, द्वादश व्रत धारिणी है, मृत्यु उपरांत देव लोक को जाती है और दान से तीर्थङ्कर नाम कर्म का उपार्जन करती है, वह मांसाहार करे या उस तीर्थङ्कर नाम कर्म के कारण

---

१. श्री उववाई सूत्र—श्री स्थानांग सूत्र स्थान ४।

स्वरूप मांस का दान करे, ऐसी कल्पना करना निपट मूर्खता है।

रोग, औषधि और नियमा-नियम विज्ञान—

जिस रोग के लिए औषधि लायी गयी थी, उस रोग का नाम 'पित्तज्वर' था। 'परिगये शरीरे दाह वक्कं तिए' का अर्थ है पित्त-ज्वर और दाह, जिसमें अरुचि, जलन तथा रक्तातिसार मुख्य लक्षण होते हैं। इस रोग को शान्त करने के लिए कोला, बिजौरा आदि तरी देने वाले फल, उनमा मुरब्बा, पेठा, कवेला, पारावत फल, चतुव्वती भाजी, खटाई वाली भाजी इत्यादि प्रशस्त माने जाते इस रोग में मांस का सख्त-निषेध होता है। वैद्यक ग्रन्थों में साफ-साफ कहा गया है—"स्निग्धं उष्णं गुरु पित्त जनकं वातहंश्च" मांस उष्ण है, भारी है, रक्तपित्त को बढ़ाने वाला है। अतः इस में मांस सर्वथा निषिद्ध है।

उपर्युक्त कथन से यह निश्चित हो जाता है कि वह औषधि मांस नहीं था वरन् तरी देने वाला कोई फल या फल का मुरब्बा था। इस प्रकार अगर प्रत्येक शब्द की अलग व्याख्या की जाये तो अर्थ स्वयं ही स्पष्ट हो जायेगा। इन शब्दों में से प्रमुख शब्द निम्नलिखित हैं—

१. दुवे—यदि कवोय का अर्थ किसी वनस्पति विशेष से लिया जाय तो यहाँ दुवे और सरीरा इन दोनों का ठीक समन्वय हो जाता है। कवोय के मुरब्बे रूप में 'दो' की संख्या का बोध हो जाता है एवं कवोय फल के मुरब्बे के लिए 'दुवे कवोय सरीरा'

"तत्थणं रेवतीएगाहा वइणीए मम अट्ठाए दुवे कवोय-सरीरा उवक्खड़िया तेहिं नो अट्ठो। अत्थि से अन्ने पारियासिए मज्जार-कड़ए कुक्कुड़ मंसए तमाहराहि एएणं अट्ठो॥"

(श्री भगवतीसूत्र शतक—१५)

आदि शब्द समूह का प्रयोग भी सार्थक हो जाता है, अतः ये बात स्पष्ट हो जाती है कि कवोय शब्द किसी पक्षी के लिए नहीं फल के लिए प्रयोग किया गया है। यह बात दुवे शब्द सें सिद्ध हो जाती है। अतः दुवे शब्द महत्त्वपूर्ण है।

२. कवोय—कवोय एक प्रकार से खाद्य वनस्पति है। इसके सेवन से ऊष्णता, पित्तज्वर एवं रक्तविकार आदि रोग शांत होते हैं। कवोय का संस्कृत पर्याय 'कपोत' है। कपोत और कपोत के शब्दों में अर्थ-वैभिन्य होता है जैसे—

कपोत—एक प्रकार की वनस्पति।

कपोत—कबूतर, कमेडा।

कपोत—कुठलांड, सफेद कुम्हेड़ा।

इस तरह कपोत का सीधा अर्थ एक प्रकार की वनस्पति ही है। जिसमें पीपल, सफेद कुम्हेड़ा और कबूतर आते हैं।

३. सरीरा—'सरीरा' शब्द कवोय से निष्पन्न पुलिंग वाले द्रव्य का द्योतक है। शास्त्रकार ने यहाँ पुलिंग में 'शरीरा' शब्द का प्रयोग किया है और उसका अर्थ मुरब्बा या पाक ही है। वैसे भी मांस के लिए सीधे जातिवाचक शब्द ही प्रयोग होते हैं। उनके साथ 'शरीर' शब्द नहीं लगाया जाता।

४. उवक्खडिया—'उवक्खडिया' शब्द पुलिंग में है तथा संस्कार का सूचक है। 'उपासक दशांग' और 'विपाक सूत्र' आदि जिनागमों में मांस के लिए "भज्जिये", "तलिए" शब्दों का प्रयोग हुआ है, 'उवक्खडिया' का नहीं।

५. नो अट्ठों—'नो अट्ठों' शब्द निषेध के लिए है। रेवती श्राविका ने भगवान महावीर के निमित्त कुष्माण्ड पाक बनाकर रखा था, किन्तु 'निमित्त दोष' लग जाने के कारण भगवान ने श्री सिंह मुनि' को उसे न लाने का निर्देश किया। जहाँ 'निमित्त-

दोष' वाला आहार ग्रहण करना भी निषिद्ध है वहाँ मांसाहार ?

६. अन्ने—'अन्ने' शब्द 'कुक्कुडं मंसए' का सर्वनाम है और इसका अर्थ है अन्य ।'अन्ने', 'कवोय-सरीरा' व कुक्कड़ मांसाए' तीनों शब्द पुलिंग में है। पुलिंग होने के कारण वे वनस्पति विशेष के ही परिचायक है ।

७. पारियासिए—इसका अर्थ है अधिक पुराना (अधिक समय का) । एक दिन की वासी वस्तु के लिए 'पारिवासिए' शब्द का प्रयोग नहीं वरन् 'पज्जुसिए' का प्रयोग होता है। ऐसी परिस्थिति में अगर 'परियासिए' शब्द का प्रयोग मांस-निषेध की ओर ही इंगित करता है ।

८. मज्जार—मज्जार पदार्थों में शीतलता का काम करता है। जिसका प्रभाव गर्मी (उष्णता, दाह) इत्यादि रोगों को शांत करने में उपयोगी है। मज्जार का संस्कृत रूप 'मार्जार' है, मार्जार से वने हुए कुछ शब्दों का अर्थ भिन्न होता है। यथा—

'मार्जार'=अब्भसह—वोयाण—हरितग—तण—'मंजार' पोई—चिल्लीया, एक प्रकार की वनस्पति, भाजी ।

मार्जार=वायु विशेष ।

मार्जार=बिडाल ।

मार्जारी, मार्जारिकी=कस्तूरी ।

मार्जार=खट्टी वस्तु ।

उपरोक्त कुछ शब्दों में ही 'मार्जार की वनस्पति का पूर्ण परिचय जाता है ।

६. कड़ए—कड़ए शब्द पुलिंग है, संस्कार का सूचक है, 'मार्जार' शब्द से सम्वन्धित है तथा 'मंसए' का विशेषण है। इसका संस्कृत रूप 'कृतक:' है। यदि यहाँ हड़ए, हए, वहिए आदि शब्दों का प्रयोग होता तो इसका अर्थ 'बिडाल से न मारा हुआ' भी

निकल सकता था परन्तु यहाँ 'कड़ए' का प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ है 'मारजार से वासित भावित' अर्थात् संस्कारित। औषधि विज्ञान में संस्कारित वस्तुओं के लिए 'दधिकृत', 'राजीकृत', 'मार्जारकृत' आदि शब्दों का प्रयोग होता है। जिसका अर्थ दही से संस्कारित, राई से संस्कारित तथा विडालका (औषधि) से संस्कारित होता है। अर्थ ये है कि यहाँ 'कड़ए' का अर्थ 'संस्कारित' और 'मार्जार-कड़ए' का अर्थ मार्जार वनस्पति से संस्कारित (भावना वाला) ठीक बैठता है।

१०. 'कुक्कुड'—कुक्कुड एक प्रकार की खाद्य वनस्पति है, जो कि बहुत दिनों तक टिक सकती है। इसके प्रयोग से गर्मी, रक्तदोष, पित्तज्वर आदि रोग शान्त होते हैं। इसका संस्कृत पर्याय 'कुक्कुट' है। कुक्कुट के विभिन्न अर्थ है। यथा—

कुक्कुट=श्रीवारक, चतुष्त्री।

कुक्कुटी=पूरणी वनस्पति।

कुक्कुट=चउपत्तिया—भाजी—वनस्पति।

कुक्कुट=मुर्गा, वतकमुर्गा।

कुक्कुट=बिजौरा।

११. मंसए—मंसए शब्द बिजौरा से निष्पन्न, पुंलिगवाची द्रव्य का द्योतक है। इसका संस्कृत पर्याय 'मांसक' होता है। मांस, मांसक और उसके तद्भव शब्दों का अर्थ इस प्रकार है।

मास=(नपुंसक लिग)=गुदा, फलगर्भ फांक।

मांसक=(पुंलिग)=पाक, गुदा।

मांस (नपुंसकलिग)=मांस, गर्भ।

मांस फला (स्त्री लिग)=जटामांसी भूत जटा, बालछड़ वनस्पति।

रक्तबीज=मूंगफली।

इन अर्थों से सिद्ध है कि मांसकः शब्द केवल पाक का बोध है। नपुंसक लिग वाला 'मांस' शब्द ही 'मांस वाचक' है, किन्तु पुंलिग शब्द मांस वाचक नहीं। यहाँ मांस शब्द पुलिग में है। इसलिए इसका अर्थ मांस नहीं वरन् पाक ही है।

इस तरह ये कहना कि भगवान् महावीर ने औषधि-स्वरूप मांसाहार किया। ये आरोप केवल भ्रामक है वरन् दिमागी संकुचन का उदाहरण मात्र है! भगवान् महावीर ने सात्विक, निर्दोष और पथ्य शाकाहार से अपने रोग का सम्यक उपचार किया। यह उपचार व्यवहार की एक साधना थी! इसके साथ ही साथ सिह जैसे श्रद्धालु मुनियों के लिए एक सान्त्वना थी।

शाकाहार और मांसाहार

सृष्टि विकास और विनाश के क्रम पर चलती है। जीवन की धुरी इन्हीं दो पहियों पर घूम रही है। जीवन के विकास के लिए प्रत्येक जीव के लिए प्रकृति ने अपनी व्यवस्था कर रखी है। जीवन के लिए कुछ ऐसे तत्व आवश्यक हैं जो जीव के शरीर में जाकर उसे विकास देते हैं। प्रत्येक प्राणी इसी सिद्धान्त पर अपने लघु रूप से विराट रूप को प्राप्त करता है। आदि काल से जब मानव ने इस सृष्टि पर अपना अस्तित्व बनाया तब से उसके लिए प्रकृति ने अपने आप इस हेतु व्यवस्था कर रखी है। जीवन इन्हीं विकास के नियमों पर चलता है। प्रारम्भ में जब मनुष्य ने या मनुष्येतर प्राणियों ने अपने विकास के निमित्त किसी पीड़ा का अनुभव किया तो अपने आस-पास उसे जो कुछ भी भोज्य पदार्थ मिला उसे उसने ग्रहण कर लिया। हमारा इतिहास बताता है कि प्रारम्भ में मनुष्य केवल फल-फूल एवं कंदमूल खाकर अपना जीवन-यापन करता था। कालान्तर में उसे जब अपनी रक्षा के निमित्त स्वनिर्मित हथियारों की आवश्यकता पड़ी तो उसने कुछ जीव जन्तुओं का शिकार किया। इस प्रक्रिया के दौरान उससे मांस आदि को देखकर उसके प्रति भी रुचि जागृत हुई। इस संदर्भ में उसने मांस आदि का भी सेवन करना प्रारम्भ कर दिया। कालान्तर में अग्नि का उपयोग प्राप्त होने पर उसने अन्य आहारों की भांति इसे भी अग्नि के माध्यम से पका कर खाना प्रारम्भ कर दिया।

हमारा प्राचीन इतिहास इस बात का साक्षी है कि मनुष्य ने

न केवल अन्य प्राणियों का वध किया वरन् स्वयं मनुष्य के माँस का भी स्वाद लिया। आज भी इनके चिह्न हमारे इतिहास में मौजूद हैं। अभी भी संसार में ऐसे कबीले हैं जहाँ मनुष्य मनुष्य को खाता है। मनुष्य का देहान्त होने पर उसका भक्षण करने का नियम आज भी अफ्रीका आदि के कुछ कबीलों से चलता है। शत्रु को भी मारकर खा जाना और इस अवसर पर उत्सव भी मनाना उनकी एक जाति परम्परा है। इस रूप में मानव भी जीव जन्तुओं को खाने वाले के रूप में हमारे सामने आता है। ऐसी धारणा है कि माँस आदि से मनुष्य का शरीर पुष्ट और लम्बी आयु वाला होता है। प्रकृति में जीवों का परस्पर भक्षण परिलक्षित होता है लेकिन मानव जो आज अपने विकास की चरम सीमा पर है और जो अपने चिन्तन, मनन्, त्याग और तप के बल पर अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ हो गया है उसके लिए यह विचारणीय है कि उसका रहन-सहन किस प्रकार हो। मनुष्य ने सदा से इसको प्रयत्न किया है कि वह सम्पूर्ण प्रकृति को अपनी मुट्ठि में कर ले। वह स्वयं विज्ञान के माध्यम से अपने आपको इस सृष्टि के नियन्ता और कर्त्ता के रूप में स्थापित कर ले उसने सदा यह चेष्टा की है कि सम्पूर्ण जगत का संचालन उसके हाथ में रहे। विज्ञान द्वारा आशातीत सफलता के कारण इतना गर्व से भर गया है कि भौतिकता की ओर निरन्तर भागता जा रहा है। जो स्वयं उसके लिए संकट बन गया है।

मनुष्य ने जहाँ एक ओर स्वयं को दीर्घायु एवं स्वस्थ बनाने के लिए नाना प्रकार के आविष्कार किए हैं वही दूसरी ओर उसने अपने आहार और भोजन आदि पर भी अनुसंधान किए हैं। जहाँ तक विज्ञान का प्रश्न है आज भी इस दिशा में अनुसंधान चल रहे हैं। पौष्टिक आहार मनुष्य के लिए आज भी एक समस्या बन

गया है। विचारणीय यह है कि जीवन के ऐसे कौन से तत्व हैं जिनके पोषण से मनुष्य स्वस्थ रह सकता है और दीर्घायु वाला हो सकता है। जहाँ तक खान-पान का सवाल है उस दिशा में यह भी विचरणीय हो जाता है कि आहार द्वारा प्राप्त किए गए तत्वों का हमारे शरीर पर मानसिक रूप से क्या प्रभाव पड़ता है।

विज्ञान आज मनुष्य से बहुत पीछे है। यह सिद्ध हो चुका है कि भोजन ही केवल मनुष्य की आवश्यकता नहीं है। ऐसे भी उदाहरण हैं जहाँ बिना भोजन के ही मनुष्य जीवित रहते देखा गया है। हमारे प्राचीन ऋषियों ने बिना किसी आहार के ही दीर्घ काल तक समस्या में लीन रहते थे। आज भी अनेक जैन एवं अजैन सम्प्रदाय के साधक दीर्घ काल तक बिना कोई आहार लिए ही स्वस्थ और प्रसन्न रहने का कीर्तिमान स्थापित कर चुके हैं। यह सब तो संयम और इन्द्रिय दमन से ही संभव है। साधारण मानव के लिए तो भोजन आवश्यक है।

बदलते समय के अनुसार मनुष्य की आहार-प्रणालियों में परिवर्तन होता आया है। आज भी संसार के अनेक देशों में एक-दूसरे से विभिन्न प्रकार के आहार चलते हैं। स्वयं भारत में ही अनेक प्रान्तों में आहार-सम्बन्धी विषमता है। प्रश्न यह है कि मनुष्य का कल्याण किस प्रकार के आहार में है।

संयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में आज भी विश्व की एक सबसे बड़ी समस्या पौष्टिक आहार की चल रही है। शोध-कर्त्ताओं ने निरन्तर आहार सम्बन्धी अनुसंधान किए हैं और कर रहे हैं। नाना प्रकार के प्रोटीन और कैलोरी वाले पदार्थों, द्रव्यों आदि का विश्लेषण बराबर चल रहा है। मनुष्य के लिए पौष्टिक आहार संबंधी अनुसंधान आज भी पूरा नहीं हुआ। विश्व की बढ़ती हुई जनसंख्या और आने वाली भविष्य में इसी की हृदय कंपा देने

वाली आशंका के कारण भोजन और निवास की विकट समस्या के कारण वैज्ञानिक इस प्रकार की शोध पर भी उतर आए हैं कि मनुष्य का भोजन समुद्र में उत्पन्न होने वाली वनस्प-तियों से भी संभव कर रहे हैं। नकली खाद्य पदार्थ के रूप में तो आज यानि कितनी वस्तुएँ हमारे सामने हैं। विज्ञान निरन्तर आहार संवंधी खोज कर रहा है।

विज्ञान के सामने एक और समस्या है। आहार से मनुष्य का शरीर पुष्ट होता है। उसमें कार्य संचालन चिन्तन, मनन की शक्ति आती है। आहार से ही वह अपना सम्पूर्ण वैचारिक और शारीरिक कार्य कर सकने में सम्पन्न होता है। विचार जगत का जो अपना मण्डल है उसका भी आधार आहार ही है। अब विज्ञान इस बात को स्वीकार करता है कि मनुष्य जिस प्रकार का आहार करेगा उसका वैचारिक संसार उसी प्रकार का होगा। आहार जब एक क्रिया सम्पन्न कर मनुष्य के शरीर में अपनी मूल लुप्त संचेतना प्रवेश कराता है तो मनुष्य के मस्तिष्क पर उसका प्रभाव होता है। आहार मनुष्य के क्रिया कलापों को प्रभावित करता है। मद्यपान से जिस प्रकार मनुष्य का मानसिक संतुलन अस्त-व्यस्त हो जाता है उसी प्रकार आहार के द्वारा भी मनुष्य का मानसिक संतुलन निर्धारित होता है। यह बात अलग है कि आहार का प्रभाव मद्यपान के समान तत्काल अपना परिणाम सामने प्रस्तुत नहीं करता है। फिर भी यह पाया गया है कि गलत या अस्वास्थ्यकर आहार के सेवन से मनुष्य पर तत्काल प्रभाव पड़ा है। यह बात इस संदर्भ में तब प्रमाणित है कि उचित आहार का भी मनुष्य पर प्रभाव पड़ता है। कहा भी गया है कि जिस प्रकार का भोजन होगा मनुष्य का चिन्तन और क्रिया-कलाप उसी राह जाएंगे। आहार द्वारा मनुष्य जो कुछ अपने शरीर में

ग्रहण करता है वह उसको उसी राह ले जाता है। इसीलिए हमारे लिए प्राचीन ऋषियों ने तामसिक आहार का निषेध किया है।

तामसिक आहार से आशय है कि इस प्रकार का भोजन जो मनुष्य को मनुष्य नहीं रहने देता है। मनुष्य की जीव जगत में अपनी प्रतिष्ठा है। वह एक ऐसा प्राणी है जो सर्वश्रेष्ठ है और परम पिता परमात्मा के अस्तित्व को स्वीकार कर इहलोक और परलोक में विश्वास करता है। वह अपने जीवन को सार्थक करना चाहता है। अन्य प्राणियों की भाँति खाए-पीए और इस दुनिया से चले गये इस सिद्धान्त से वह हट सकता है। अतः उसका अपनी वैशिष्ट्य है। मनुष्य जितना चिन्तन मनन कर सकता है उतना सृष्टि का अन्य कोई प्राणी नहीं कर सकता। अतः आहार का जव उसके चिन्तन मनन पर प्रभाव पड़ता है तो इस दृष्टि से यह विचारणीय है कि उसका आहार कैसा हो।

जहाँ तक हमारे देश भारत का प्रश्न है हमारे ऋषि इस दिशा में सदा प्रयत्नशील रहे हैं। हमारे पूर्वजों ने आहार संवंधी नियम सदा समाज के सामने रखे हैं। और इसी दृष्टिकोण से समाज में सुर और असुर का वर्गीकरण भी हमें इतिहास के पन्नों पर मिलता है। वहुत पीछे न जाकर केवल रामायण काल से ही अगर हम देखें तो हमारे सामने असुर नामक एक समाज आता है जो मदिरा, मांस आदि का सेवन करता था। सुर नामक समाज इन सवसे विल्कुल दूर रहता था। दोनों की विचारधाराएँ अलग थीं और जव-जव इनमें संघर्ष हुया तव-तव विजयश्री सुर समाज के हाथ में ही रही। इसका आशय यह कदापि नहीं कि यह संघर्ष केवल आहार संवंधी विचारधारा को लेकर हुआ वरन् यह एक सामाजिक संस्थापना का संघर्ष था। रामायण काल के उपरान्त भी अन्य काल में यही क्रम चलता रहा है। समाज सदा

उन लोगों के द्वारा बल प्राप्त करता रहा है जो शाकाहारी थे।

आज सारे देश में आहार संबंधी कोई एकरूपता नहीं है प्रान्त या नगर स्तर पर कोई एकरूपता नहीं। जैसे कि प्राचीन काल में पायी जाती थी कि संपूर्ण उत्तर भारत और सम्पूर्ण दक्षिण भारत मात्र दो प्रकार के आहार में विभाजित था। अब तो सब प्रकार का आहार एक ही परिवार के लोग करने लगे हैं। एक ही परिवार में शाकाहारी और मांसाहारी व्यक्ति पाए जाते हैं।

खान-पान संबंधी हमारी रुचियाँ इतनी बदल गयी हैं कि किस समय किस प्रकार का आहार ग्रहण किया जाए ऐसा कोई नियम नहीं रह गया है। वैसे पश्चिम के देशों में खानपान संबंधी कुछ अपने सामाजिक नियम है और उन्होंने समय के अनुसार उनका विभाजन कर रखा है। उदाहरण के लिए सुबह (ब्रेक-फास्ट) दोपहर के समय (लंच) और संध्या समय (डिनर) उनकी अपनी विशेषता है। इनमें किस समय क्या लेना चाहिए निर्धारित है। और समयानुसार खानपान न करने वाला व्यक्ति उनके समाज में उपहास का कारण बन जाता है। हमारे समाज में कम से कम दो बार और तीन बार खानपान की व्यवस्था है। आज के आधुनिक समाज में सुबह नाश्ते का भी प्रचलन हो गया है। पर गाँवों में आज भी दोपहर से पहले का भोजन कलेवा और शाम का भोजन ब्यालु के रूप में चलता है। वैसे दोपहर में यदा कदा हल्का सा खानपान हो जाता है। हमारे यहाँ किस समय के खाने में क्या हो ऐसा कोई सामाजिक नियम नहीं है। जब मन में जो आया खा बना लिया। प्रायः परिवार का मुखिया ही इस बात का निर्णय करता है कि आज क्या पकेगा। अपनी इच्छा अनुसार वह बाजार से तत्सम्बन्धी व्यवस्था करता है। मौसम के अनुकूल प्राप्त होने वाले भोज्य पदार्थ ही खानपान के

प्रयोग में आते हैं।

मनुष्य हमेशा किसी एक प्रकार की लकीर पर नहीं चलता। खानपान संबंधी रुचि पर भी यही नियम लागू है। कोई भी मनुष्य सदा एकसा भोजन हमेशा नहीं कर सकता है। सदा बदल बदल कर नाना प्रकार के खाद्य पदार्थों का ही वह सेवन करता है। इन बदलती रुचियों के संदर्भ में उसके लिए केवल एक विशेष प्रकार का खाद्य पदार्थ निर्धारित नहीं किया जा सकता है। नाना प्रकार के रुचिकर व्यंजन ही उसको आत्मिक संतुष्टि दे सकते हैं।

इसी दृष्टिकोण से बराबर कौनसी वस्तु खाने योग्य है और कौनसी नहीं इस पर वैज्ञानिक शोध करते आए है। आज से सौ या पचास साल पहले जिस प्रकार के खाद्य पदार्थ हमारे समाज में थे उनकी तुलना आज नाना प्रकार और भी खाद्य पदार्थ अधिक संख्या में बढ़ गए हैं। बहुत सी खाद्य वस्तुएँ तो बाहर के देशों से आकर हमारे देश में उत्पादित होने लगी है। इस प्रकार हमारे देश का खानपान बराबर बदलता रहा है।

खानपान के साथ एक सन्तोष की भावना का होना भी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अनिवार्य है। सबसे बड़ी बात यह है कि जो खाद्य पदार्थ खाने योग्य बनाता है उसका व्यक्तित्व कैसा है? प्रायः देखा गया कि भरपेट खा लेने के बाद भी मनुष्य को ऐसा लगता है कि जैसे आत्मा नहीं भरी। प्रायः होटल आदि का भोजन मनुष्य को रुचिकर होने के बावजूद उसे स्वस्थ इसलिए नहीं बनाता कि उसका निर्माता उसके परिवार का सदस्य नहीं है। पत्नी के हाथों से पति को जो संतुष्टि एवं स्वास्थ्य मिलेगा वह उसे होटल के भोजन में नहीं मिल सकता। भोजन के साथ विचारधारा और भोजन बनाने वाली व्यक्तित्व का भी सम्बन्ध जुड़ा है।

मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक स्तर पर आहार सम्बन्धी सारी खोज इसी बुनियाद पर चल रही है कि पोष्टिक आहार किस प्रकार का हो।

प्रायः मनुष्य का आहार हम दो रूप में विभाजित करते हैं। १) शाकाहारी (२) माँसाहारी।

शाकाहारी से हमारा आशय यह है कि ऐसा भोजन जिसमें शुद्ध सात्त्विक पदार्थ है। मांसाहार से आशय उस प्रकार का भोजन है जिसमें जीव-जन्तु भी भोज्य माने गए हैं।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और अपनी इसी सामाजिकता के कारण वह निरन्तर प्रगति की ओर है। प्राचीन काल में वह यथवर था अब वह समाज के रूप में अपनी स्थापना कर एक स्थान विशेष देश विशेष का वासी हो गया है। आज संसार के सभी मनुष्य अपने देश और समाज की सीमाओं के द्वारा एक दूसरे से जाने पहचाने जाते हैं। आज हम जहाँ भारतवासी हैं वहीं अंग्रेज इंग्लेंडवासी कहलाता है। हालांकि वही मनुष्य और हम भी इस प्रकार समाज और देश की सीमाएँ आज सम्पूर्ण हैं। मानव संसार विभाजित है। इस प्रकार के स्थायी निवास के कारण हमारे देश में या उनके देश में जो कुछ भी प्राप्त हो सकता है वही भोजन के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। उत्तरी ध्रुव में जहाँ केवल वर्फ ही वर्फ है और इस बर्फ के कारण वहाँ किसी भी प्रकार की वनस्पति या पेड़ पौधों का संभव नहीं वहाँ केवल वर्फ में पाये जाने वाले जीव ही उनका भोज्य पदार्थ हो सकता है। वहाँ इस बात का मानना कि उनकी खाद्य परम्परा को बदल दिया जाए अनुचित ही होगा। उसके बावजूद अगर किसी देश में जहाँ जीव जन्तुओं और पेड़ पौधे आदि नहीं वहाँ भोजन के सम्बन्ध में दोनों के बीच देखना यह होगा कि क्या उपयोगी है

और क्या अनुपयोगी है ?

आहार सम्बन्धी विपरीत और विरोधी विचारधारा मनुष्य के समाज में प्रारम्भ से ही चली आ रही है। आज भी संसार में दो वर्ग हैं शाकाहारी और माँसाहारी। दोनों वर्ग अपने-अपने तर्कों पर जोर देते है और अपने-अपने पक्ष का समर्थन करते हैं। सौभाग्य से विज्ञान हमारे देश में है। कम से कम माध्यम के रूप में इस बात को तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि जो कुछ विज्ञान सम्मत होगा वही मनुष्य के लिए उपयोगी है। इन दोनों विचारधाराओं को विज्ञान की कसौटी पर कसने पर जो कुछ भी निष्कर्ष हमारे सामने आयेंगे वही मान्य है। तब उन्हें विवाद की कोई गुंजाइश नहीं रहती। शाकाहार और माँसाहार सम्बन्धी विवेचन विज्ञान की कसौटी पर लगभग पचास साल से बराबर कसे जा रहे हैं और दोनों के अपने-अपने निष्कर्ष हमारे सामने हैं।

जहाँ तक हमारे देश का प्रश्न है वैदिक काल से ही हमारे ऋषि-मुनियों ने माँसाहार का वर्णन किया है और आगे चलकर परम पावन भगवान महावीर आदि ने भी इसका विरोध किया है। इसका कारण मात्र जीव जगत के लिए दया या अहिंसा ही नहीं वरन् मनुष्य की मानवीयता का भी विकास है। मनुष्य जो कुछ ग्रहण करता है वह उसके शरीर में प्रवेश कर नाना प्रकार के रसों में बदल कर उसे शारीरिक पुष्टि देता है। इसके अनुसार ही उसके शरीर की समस्त इन्द्रियाँ कार्य करती हैं। यह तो सुविदित है कि मनुष्य के शरीर का संचालन और उसके शारीरिक एवं मानसिक क्रिया-कलाप उसकी इन्द्रियों के सहारे संचालित हैं। फलतः मनुष्य जो भी आहार ग्रहण करता है वह रस में परिवर्तित होकर उसकी इन्द्रियों को भी प्रभावित करता है। अतएव भोजन के द्वारा ही उसकी विचारधारा बनती

है। जहाँ तक मनुष्य के चिन्तन मनन का प्रश्न है वहाँ तक यह सब भी इन्द्रियों द्वारा संचालित होता है। उदाहरण के लिए एक युवक और एक वृद्ध व्यक्ति के क्रिया-कलाप में बहुत अन्तर होता है। युवक की मनोभावनायें और वृद्ध की मनोभावनायें एक दूसरे से बहुत कुछ भिन्न, केवल इसीलिए होती है कि उनकी शरीर रचना में अन्तर है। इन्द्रियों से ही विचारधारा का संचालन होना सम्भव है। जिस मशीन में जिस प्रकार के पुर्जे होंगे वह उसी प्रकार कार्य करेगी। मनुष्य का शरीर भी एक मशीन के समान है इसमें इन्द्रीय रूपी पुर्जे लगे हैं इन पुर्जों को जैसा आहार मिलेगा वैसा ही प्रभाव पड़ेगा।

प्रश्न यह है कि मनुष्य में माँसाहार की प्रवृत्ति क्यों आई? कुछ तो परिस्थितियों ने उसे इसके लिये विवश किया और कुछ वह उन जीव जन्तुओं को देखकर प्रभावित हुआ जो उससे अधिक बलशाली हैं। उदाहरण के लिये शिकारी जानवरों शेर आदि को देखकर उस पर प्रभाव पड़ा। इन जीवों का खाद्य माँसाहार ही है। अतएव उसके मन में यह बात जम गई कि माँसाहार से अपार शक्ति प्राप्त हो सकती है। माँस का सेवन करके वह भी शेर के समान शक्तिशाली हो सकता है। माँस का निर्माण रुधिर से होता है। अतएव रुधिर अपने शरीर की एक आवश्यकता के रूप में पाकर मनुष्य ने उसे मांसाहार के रूप में ग्रहण करना स्वीकार कर लिया। कालान्तर में धीरे-धीरे उसने अपने अनुसन्धानों के द्वारा यह पा लिया कि उसमें से कौन-कौन से जीव उसके भक्षण के योग्य हैं और वह उनका सेवन करने लगा। प्राचीन काल में प्रायः एक राज्य पर आक्रमण कर उसे अपने आधीन कर लिया करता था। इस कार्य के लिये विशाल सैन्य वाहिनी की आवश्यकता पड़ती थी। सेना में बलवान और शक्तिशाली पुरुषों से ही काम नहीं चलता था बल्कि उनके लिए यह आवश्यक होता था कि वह प्रसन्नतापूर्वक

रक्तपात कत्लेआम कर सके। किसी भी मनुष्य को विना किसी हिचक के मच्छर मक्खी के समान मार डाले। दया का भाव उनके मन में विल्कुल न रहे। इस प्रकार की मनोवृत्ति केवल मांसाहार के द्वारा ही सम्भव है। इस कारण भी विशाल सैन्य वाहिनी के लिये माँसाहार अनिवार्य कर दिया गया है और एक वहुत वड़ा वर्ग माँसाहारी वनता चला गया। आज भी नवयुवकों और सेना के जवानों में यह भावना काम करती है कि माँस के सेवन के द्वारा ही वह वलशाली वन सकते हैं। माँस से ही उनमें अपार शक्ति आती है। जो माँस का सेवन नहीं करते उन्हें दुर्वल माना जाता है। आज भी संसार के अधिकांश देशों में वहुत अधिक मात्रा में माँस का ही प्रयोग होता है। सेना के लिये इतना अधिक मांस दिया जाता है कि उसकी तुलना में शाकाहारी भोजन कुछ भी नहीं है।

जहाँ तक मनुष्य के पोषण का प्रश्न है। प्रश्न मांसाहार या शाकाहार का नहीं वरन् इस वात का है कि उसे पौष्टि कैसे प्राप्त हो? ऐसे कौन से पदार्थ है कि जिनके सेवन से मनुष्य स्वस्थ और प्रसन्न रह सकता है। सैनिकों के लिये संकटकालीन भोजन की व्यवस्था के रूप में कुछ भी इस प्रकार का आहार गोली आदि के रूप में जमा कर दिया जाता है ताकि सेना से विछुड़ने पर और संकट में पड़ने पर वे उन गोलियों द्वारा अपनी क्षुधा की पूर्ति कर सके। इस प्रकार की गोलियों का निर्माण पौष्टिक पदार्थों के सत्वों से ही सम्भव है। जव इस प्रकार की गोलियां मनुष्य को लाभदायक हो सकती हैं तो क्या शाकाहार भी लाभदायक नहीं हो सकता। क्या केवल मांसाहार से ही सैनिक अपनी रक्षा कर सकता है?

आज संसार के सामने एक वड़ा प्रश्न है कि क्या खाया जाये और क्या न खाया जाये? हमारे वैज्ञानिक वरावर इस

अनुसन्धान में रहे हैं और मनुष्य का जीवन दीर्घायु तथा उत्तम रखने के लिये प्रयत्नशील है। नित्य नये प्रकार के पौष्टिक खाद्य पदार्थ बाजार में जनता के सामने आते हैं और हम सब भी उनसे परिचित हैं। प्रायः समाचार पत्रों में हमें इस प्रकार के बड़े-बड़े विज्ञापन देखने के लिए मिलते हैं कि इनके सेवन से मनुष्य अतिरिक्त शक्ति और स्फूर्ति पा सकता है।

मनुष्य के समक्ष सबसे बड़ी समस्या है उसकी अपनी लालसा, हर व्यक्ति जो इस धरती पर आया है यह जानते हुए भी कि एक दिन उसे इस धरती से जाना है इसके बावजूद वह मरना नहीं चाहता। ज्यादा से ज्यादा जीना चाहता है और ज्यादा से ज्यादा सुख भोगना चाहता है। वह दुखी और बीमार होकर नहीं रहना चाहता। यही लालसा उसको इस प्रकार के अनुसन्धान करने के लिये विवश कर देती है कि वह अपने जीवन को अधिकाधिक सुखमय बना सके। आहार खान-पान से ही मनुष्य का जीवन चलता है। वह इसके द्वारा ही अपने शरीर को इस रूप में रखना चाहता है। प्राचीन काल से लेकर आज तक जो कुछ भी खाने बनाने की रीति-रिवाजों में परिवर्तन आया है वह सब इसी का परिणाम है। पहले कच्चे रूप में, बाद में भूनकर खाये जाने वाले रूप में और आजकल कई प्रकार से पकाये बनाये जाने के रूप में अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थों का मनुष्य सेवन करता है। अब किसी भी रूप में वह जीना उचित परिक्षण के किसी भी वस्तु को ग्रहण नहीं करता।

मनुष्य सदा से ही इस ओर प्रयत्नशील रहा है कि कम से कम भोजन द्वारा वह अधिक से अधिक शक्ति प्राप्त कर सके। इसके लिये उसने बहुत से प्रयोग किये हैं और निकट भविष्य में भी हमारा विज्ञान बराबर इसी दिशा में प्रगति करता जायेगा।

पश्चिम के वैज्ञानिक बराबर अनुसन्धान कर रहे हैं और

उनके आश्चर्यजनक परिणाम सामने आये हैं। उनका कहना है कि जिस प्रकार का आहार हम ग्रहण करेंगे उसी प्रकार से हम सोच विचार भी करेंगे। हर मनुष्य सपना देखता है वैज्ञानिकों ने सपने का सम्बन्ध भोजन से भी जोड़ा है और इस बात को प्रमाणित कर दिया है कि जिस प्रकार का भोजन होगा वैसा ही सपना हमें आयेगा। गरिष्ट भोजन करने वाला व्यक्ति निश्चित रूप से डरावने सपने देखेगा। उसका सारा शरीर इस प्रकार के भोजन के कारण एक विशेष प्रकार के तनाव से भरा रहेगा। इसके विपरीत हल्का फुल्का भोजन करने वाला मीठे सपने देखेगा अथवा सुख की नींद सोएगा। जिस प्रकार का भोजन होगा हमारा मस्तिष्क वैसी ही विचार तरंगे निकालेगा। जहाँ तक इन वैज्ञानिकों के निष्कर्ष का प्रश्न है वहां तक हमारे प्राचीन काल के ऋषि मुनि भी इस बात के समर्थक थे। प्राचीन ग्रन्थों में इसके उदाहरण भरे पड़े हैं। हमारे यह पूर्वज एक कदम आगे बढ़कर यह भी कह गये हैं कि भोजन से ही मनुष्य लम्बी आयु पा सकता हैं या बहुत छोटी उमर में ही इस दुनिया से कूच कर सकता है।

हमारे शरीर का निर्माण प्रकृति ने कई प्रकार के तत्वों से किया है। इन तत्वों का हमारे शरीर में होना आवश्यक है। बिना इनके हमारा शरीर चल नहीं सकता। अगर इनमें से एक में भी कमी या अवेशी हो जाए तो वह रोगग्रस्त हो जाएगा। शरीर के लिए इनमें संतुलन का होना उतना ही आवश्यक है जितना कि किसी मशीन को चलाने के लिए उसके एक-एक पुर्जों का ठीक होना। रोगग्रस्त होने पर मनुष्य का इलाज किया जाता है और जिस तत्वउका जो असंतुलन होता है उसे भी दवा के माध्यम से ठीक किया जाता है। भोजन के द्वारा इस बात का प्रयास किया जाता है कि यह पाँचों तत्व बराबर संतुलित

रहे। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मनुष्य के शरीर में लोहा, लवण आवश्यक हैं। इनसे ही शरीर में उष्णता बनी रहती है। भोजन में यह देखा जाता है कि किस पदार्थ में कितने लोह या लवण तत्व हैं। इसके आधार पर ही उसका खाना पीना निश्चित किया जाता है। पाँच तत्वों से बना मनुष्य का यह शरीर खाद्य पदार्थ के द्वारा ही इन पाँच तत्वों को बनाए रखता है।

भोजन चाहे जिस प्रकार का भी हो माँसाहारी हो या शाका-हारी उनमें यह विशेषता होनी चाहिये और इसके आधार पर ही वह मनुष्य के खाने योग्य ठहराये जा सकते हैं।

पश्चिम के प्रसिद्ध भोजन विशेषज्ञ डा० रोबर्ट एस० हूवर कहते हैं कि भोजन मनुष्य लेता तो अवश्य है पर भोजन मनुष्य खाता नहीं वरन् भोजन मनुष्य को खाता है। उनका कहना है कि भोजन मनुष्य के लिए जीवन नहीं मृत्यु है। भोजन करके मनुष्य अपनी मौत अपने पास बुलाता है। उनके कथनानुसार भोजन के द्वारा हम इतना ज्यादा जहर अपने शरीर में एकत्रित करते है। भोजन से जो तत्व उसके शरीर में जाते हैं वे उसके लिए मारक सिद्ध होते हैं। इसी बात को हमारे प्राचीन ऋषि मनु ने दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा है। आहार अमृत है और आहार विष भी है। दोनों को समान रुप में उन्होंने माना है। डा० हूवर आजकल समुद्री वनस्पतियों के अनुसन्धान में लगे हुवे हैं। सोयाबीन से दूध निकालने की विधि का उन्होंने आविष्कार किया है। इस महान आहार वैज्ञानिक का अपना व्यक्तिगत जीवन यह है कि लगातार 10 वर्ष तक मासाहारी रहने से बाद वह शुद्ध शाका-हारी हो गए हैं। अब वह एक नए प्रकार के अनुसन्धान में लगे हुए हैं। अर्थात् वह शाक. सब्जियों के द्वारा माँस आदि बनाने का प्रयास कर रहे हैं। जिस प्रकार सोयाबीन से उन्होंने दूध बनाया है उसी प्रकार वह अंडे मछलियाँ आदि जैसा स्वाद देने

वाले पदार्थ भी शाक सब्जियों के द्वारा बनाना चाहते हैं।

संसार में कितने कोटि जीव हैं इसका तो कुछ पता नहीं पर कहा यह जाता है कि संसार में 84 लाख योनियां हैं। एक जीव मृत्यु के उपरान्त दूसरे जीव के शरीर में भटकता रहता हैं। तमाम जीव जन्तु एक दूसरे के लिए उपयोगी हैं। कितने प्रकार के जीव कब और कहां वध किए जाते हैं इसका कोई निश्चित क्रम या संख्या उपलब्ध नहीं है। फिर भी एक सर्वेक्षण के अनुसार संसार में प्रतिक्षण 170 जीवों का वध किया जाता है प्रकृति विकास की ओर बराबर बढ़ रही है। विनाश की गति मनुष्य ने कम कर दी है। स्वयं मनुष्य की जन संख्या का यह हाल है कि अकेले भारतवर्ष में ही प्रतिक्षण दो शिशु उत्पन्न हो रहे हैं और एक मिनट में केवल तीन व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं। प्रतिमाह 10 लाख की गति से केवल भारत में ही जन संख्या बढ़ रही है। इसी प्रकार जीव जन्तु भी बढ़ रहे हैं उनका वध बराबर हो रहा है। मांसाहारी व्यक्तियों का मत है कि अगर उनका वध न किया गया तो संसार में जीव ही जीव रह जायेंगे। मनुष्य कहीं नहीं होगा। केवल भारत में ही चार अरब चूहे हैं। इसी प्रकार अन्य जीव जन्तुओं की संख्या पर अतएव उनका वध किया जाना और मांस के रूप में उनका सेवन करना आवश्यक है। मांसाहारी व्यक्ति का यह तर्क थोड़ी देर के लिये सही मान लिया जाए तो भी मूल प्रश्न यह है कि जब मनुष्य की बढ़ती हुई जनसंख्या पर नियंत्रण किया जा सकता है तो क्या जीव-जन्तुओं का भी नियंत्रण नहीं किया जा सकता। आज मनुष्य के चरण चन्द्रलोक पर पहुंच चुके हैं। वह दिन दूर नहीं जब मनुष्य चन्द्रमा को रहने योग्य बना लेगा। मनुष्य जब अपने को पृथ्वी से चन्द्रलोक तक फैला सकता है तो क्या जीव-जन्तु भी अपने लिए जगह नहीं बना सकते। सभी जीव-जन्तु

हमारे लिए उपयोगी हैं अगर माँसाहार के द्वारा जाति समेत नष्ट कर दिए गए तो फिर हमारा वहुत बड़ा अहित होगा। अतः यह कहना कि जीव-जन्तु बढ़ कर एक समस्या बन जायेंगे गलत है। देखा यह गया है कि अनेक प्रकार के जीव-जन्तु अनेक प्रकार की तासीर वाले होते हैं। शेर का माँस मनुष्य नहीं खा सकता। वह इतना गर्म होता है कि मनुष्य उसे सह नहीं सकता। इसी प्रकार और भी जीव-जन्तु है जिनका माँस अपनी तासीर के कारण अहित कर है। सिगरेट पीना हानिकारक है पर मनुष्य उसे पीता है क्योंकि उसका तुरन्त असर उस पर नहीं होता। धीरे-धीरे निकोटीन के रूप में जहर उसके फेफड़े में जमता जाता है। जिसका पता उसे बाद में लगता है। इसी प्रकार जानवरों के माँस का सेवन करने से उनकी तासीर का पता बाद में लगता है। शाकाहार भोजन में जिस प्रकार खेसारी की दाल खाने से शरीर टेड़ा-मेड़ा हो जाता है उसी प्रकार हिरण मुर्गी, बत्तख आदि के मांस का सेवन करने वाले व्यक्ति पोलियों का शिकार होते हैं। भोजन का असर सबसे ज्यादा स्त्री के शरीर पर पड़ता है। गर्भावस्था में जिस प्रकार का भोजन वह करेगी शिशु वैसा ही जन्म लेगा। भोजन का इससे बड़ा और क्या प्रमाण हो सकता है कि वह न केवल वर्तमान पीढ़ी को ही वरन् भावी जीवन को भी प्रभावित करता है। आज हम जो कुछ आहार रूप में ग्रहण करते हैं उसका असर हमारे भविष्य की पीढ़ियों पर भी होता है। कैंसर, दमा आदि जैसे रोग पीढ़ी दर पीढ़ी केवल इसीलिए चलते हैं कि माता-पिता से प्राप्त आहार से भी गर्भस्थ शिशु का पोषण होता है। अतः आहार के माध्यम से सूक्ष्म कीटाणु शिशु के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। भोजन की इतनी बड़ी महत्ता को तो मानना ही पड़ेगा।

संतुलित भोजन और उचित रुप में उसका सेवन भी जीवन के लिए शुभ है। माँसाहार और शाकाहार रुप में जब हम उस-

का ग्रहण करते हैं तो हमें देखना यह होगा कि इनमें से परस्पर किसमें किस प्रकार की गुणवत्ता है और इसके आधार पर ही हम इसका सेवन करने की राय देंगे। विज्ञान के हाथ में आज इतनी शक्ति हैं कि वह किसी भी पदार्थ का सूक्ष्म से सूक्ष्म विश्लेषण कर सकता है। किसी प्रकार के भोजन में कौन से तत्व हैं ज्ञान तत्काल उनका विश्लेषण कर देती है। भोजन शाकाहारी हो या माँसाहारी दोनों के तत्व विज्ञान स्पष्ट कर सकती है। अग्र तालिका से दोनों भोजनों के तत्व स्पष्ट है :—

किसी भी प्रकार के भोजन में विज्ञान के अनुसार प्रोटीन, चिकनाई, खनिज लवण, कार्बोहाइड्रेट्स, केलिश्यम, पत्रस्फोरस, लोहा, कैलोरी आदि की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के तत्व शरीर को पुष्ट रखते हैं। इन तत्वों के द्वारा ही मनुष्य के शरीर को नाना प्रकार के अंग परिपुष्ट होते हैं। उदाहरण के लिये हड्डियों के विकास के लिए लोहा, फास्फोरस, कैलिश्यम और खनिज लवण की आवश्यकता पड़ती है। शरीर की वाहरी त्वचा की चिकनाई के लिये प्रोटीन आवश्यक है। वैसे प्रोटीन विटामिन के रूप में हमारे शरीर में जाता है। विटामिन के भी कई भेद हैं। इनका वर्गीकरण ए०, बी०, सी०, डी० के रूप में किया गया है। नेत्रों के ज्योति के लिए तथा सौन्दर्य वर्धन के लिए भी इस प्रकार के विटामिन आवश्यक हैं। विटामिन और प्रोटीन की कमी के कारण मनुष्य के शरीर में नाना प्रकार के दोष आ जाते हैं। फलतः उसके अंगों का विकास रुक जाता है। प्रायः देखा गया है कि किसी आदमी का एक हाथ लम्बा और दूसरा हाथ अपना विकास न पाने के कारण बहुत छोटा है। यदा-कदा हड्डियों के दोष के कारण मनुष्य का शरीर टेढ़ा-मेढ़ा हो जाता है। इस कारण विटामिन, प्रोटीन उचित विकास के

नाम पदार्थ Name of Food Stuff		प्रोटीन Protein Content %	चिकनाई Fat %
Wheat Flour	गेहूं का आटा	12.1	1.7
Bajra (Cambu)	बाजरा	11.6	5.0
Juar (Cholam)	ज्वार	10.4	1.9
Barley	जौ	11.5	1.3
Maize Dry	मकई	11.1	3.6
Rice	चावल	8.5	0.6
Rice Puffed	मुरमरा	7.5	0.1
Green Gram	मूंग	24.0	1.3
Black Gram	उड़द	24.0	1.4
Red Gram	अरहर	22.3	1.7
Lentil	मसूर	25.1	0.7
Peas	मटर	22.9	1.4
Bengal Gram	चना	22.5	5.2
Cow Gram	लोभिया	24.6	0.7
Soya Beans	सोयाबीन	43.2	19.5
Mint	पुदीना	4.8	0.6
Rape see leaves	सरसों का साग	5.1	0.4
Spnach	पालक	11·9	0.9
Bitter Gourd	करेला	2.9	0.1
Cluster beans	ग्वार की फली	3.7	0.2
Ladies finger	भिण्डी	2.2	0.2
Mango Green	केरी (आम)	0.05	0.1
ingara	सिंघाड़ा	4.7	0.3

खनिज लवण Mineral Matter %	कार्बोहाइड्रेटस Carbo-hydrates %	कैलशियम Calcium %	फासफोरस Phos-Phorous %	लोहा Iron Units	कैलोरी Calories per %Grs.
1.8	72.2	0.04	0.32	7.3	353
2.7	67.1	0.05	0.35	8.8	360
1.8	74.0	0.03	0.28	6.2	355
1.5	69.3	0.03	0.23	3.7	355
1.5	66.2	0.01	0.33	2.1	342
0.9	77.4	0.01	0.28	2.8	349
3.4	74.3	0.02	0.16	6.2	328
3.6	56.6	0.14	0.28	8.4	334
3.4	60.3	0.20	0.37	9.8	350
3.6	57.2	0.14	0.26	8.8	353
2.1	59.7	0.13	0.25	2.0	346
2.3	63.5	0.03	0.36	5.0	358
2.2	58.9	0.07	0.31	8.9	372
3.2	55.7	3.07	0.49	3.8	327
4.6	22.9	0.24	0.69	11.5	432
1.6	0.8	0.20	0.08	15.6	57
2.5	7.1	0.27	0.11	12.5	52
1.5	4.0	0.06	0.01	5.0	32
1.4	9.8	0.05	0.14	9.4	60
1.4	9.9	0.13	0.05	5.8	56
0.7	7.7	.09	0.08	1.5	41
0.4	8.8	.01	0.02	4.5	39
1.1	23.9	.02	0.15	0.8	117

Tomato green	टमाटर	1.9	0.1
Almond	बादाम	20.8	58.9
Cashew nut	काजू	21.2	46.9
Co-coanut	नारियल	4.5	41.6
Gingelly	तिल	18.3	43.3
Groundnut	मूंगफली	31.5	39.8
Mustard seed	राई	22.0	39.7
Pistochio nut	पिस्ता	19.8	53.5
Walnut	अखरोट	15.6	64.5
Dhania	धनिया	14.1	16.1
Cumin	जीरा	18.7	15.0
Fenugreek seeds	मेथी	26.2	5.8
Kandanthippli	पीपल	6.4	2.3
Mace	जावित्री	6.5	24.4
Nutmeg	जायफल	7.5	36.4
Omum	अजवायन	15.4	18.4
Pepper	काली मिर्च	11.5	6.8
Turmeric	हल्दी	6.3	5.1
Dates (Persian)	खजूर	3.0	0.2
Cheese	पनीर	24.1	25.1
Khoya	खोया	14.6	31.2
Ghee	घी		98.0
Skimmed Milk Powder	स्प्रेटा दूध पाऊडर	38.0	0.1
		FLESH FOODS	
Egg	अण्डा	13.3	13.3
Fish	मछली	22.6	0.6
Mutton	बकरी का मांस	18.5	13.3
Pork	सूअर का माँस	18.7	4.4

0.7	4.5	0.02	0.04	2.4	27
2.9	10.5	0.23	0.49	3.5	655
2.4	22.3	0.05	0.45	5.4	596
1.0	13.0	0.01	0.24	1.7	444
5.2	25.2	1.44	0.57	10.5	564
2.3	19.3	0.05	0.39	1·6	549
4.2	23.8	0.49	0.7	17.9	541
2.8	16.2	0.14	0.43	13.7	626
1.8	11.0	0.10	.38	4.8	687
4.4	21.6	0.63	.37	17.9	288
5.8	36.6	1.08	0.49	31.0	356
3.0	44.1	0.16	0.37	14.1	333
4.8	65.8	1.23	0.19	62.1	310
1.6	47.8	0.18	0.10	12.6	437
1.7	28.5	0.12	0.24	4.6	472
7.1	38.6	1.42	0.30	14.6	379
4.4	49.5	0.46	0.20	16.8	305
3.5	69.4	0.15	0.28	18.6	349
1.3	67.3	0.07	0.8	10.6	283
4.2	6.3	0.79	0.52	2.1	348
3.1	20.5	0.65	0.42	5.8	421
—	—	—	—	—	900
6.8	15.0	1.37	1.00	1.4	357

मांसाहारी खाद्य

1.0	0.00	0.06	.22	2.1	173
0.8	0.00	0.02	.19	0.9	91
1.3	0.00	0.15	.15	2.5	194
1.0	0.00	0.03	.2	2.3	114

आवश्यक हैं। प्रायः देखा जाता है कि मनुष्य का शरीर उचित ढंग से पा रहा है पर कुछ समय के बाद या तो उसके नेत्रों की ज्योति कम हो जाती है। चश्मा लगने लगता है अथवा समय से पहले ही बुढ़ापे की झुर्रियाँ चेहरे पर आने लगती हैं। उमर से पहले बालों का सफेद होना भी शुरू हो जाता है। देखा गया है कि आठ दस साल के बालक और बालिका भी इस रूप में पाये जा रहे हैं। यह सब विटामिन और प्रोटीन का करिश्मा है। इनका उचित मात्रा में सेवन न होने के कारण ही शरीर इस अवस्था को प्राप्त होता है। विज्ञान ने स्वास्थ्य चिकित्सा के माध्यम से मनुष्य के रोगी शरीर को ठीक करने का जो भी साध्यम विभिन्न प्रकार की औषधियों के रूप में निकाला है उनका एक मात्र मूलाधार विटामिन और प्रोटीन ही है। जो दवा के रूप में मनुष्य के शरीर में प्रवेश पाते हैं उसे स्वास्थ्य प्रदान करते हैं।

मनुष्य की शरीर रचना वास्तव में इसका निर्माता जो भी हो एक ऐसा मायाजाल है जो विज्ञान को भी चकित कर देने वाला है। मनुष्य के शरीर की रचना को आज वैज्ञानिकों ने पूर्ण रूप से देख लिया है। और वे चकित हैं कि इतनी सुन्दर और कुशलता पूर्वक की गई रचना कम से कम उनके द्वारा तो संभव नहीं है। मात्र अगर हम मनुष्य की उदर प्रणाली को ले तो वह हैरान कर देने वाली बात है। व्यायाम और योगासन करने वाले व्यक्तियों को हमने देखा होगा। प्रायः वह पेट की अंतड़ियों को घुमा कर दिखाते हैं जिससे प्रतीत होता है कि हमारे शरीर में चक्की के समान भोजन के पाचन की व्यवस्था है। हम जो कुछ भी खाते हैं वह इन्हीं पाचन नलियों में प्रवेश करता है जहाँ से वह चक्की के समान पिस कर विभिन्न वाहनियों द्वारा हमारे शरीर के लिये आवश्यक तत्वों में बदल जाता है। किस मनुष्य

की क्या पाचन शक्ति है इसका निष्कर्ष उस व्यक्ति के शरीर रचना के आवार पर ही हो सकता है। वैसे कहा तो यह गया है कि हमारे शरीर में जठराग्नि होती है जिसमें पड़ कर सभी प्रकार के पदार्थ भस्म हो जाते हैं। गरिष्ठ भोजन करने पर मनुष्य को अपना शरीर भारी मालूम पड़ता है। हल्का भोजन करे न पर वह चुस्ती और फुर्ती महसूस करता है। भोजन का पाचन शक्ति पर प्रभाव पड़ता है। इस कारण यह भी देखना होता है कि भोजन किस प्रकार हो। चौंका देने वाली बात यह है कि मनुष्य के शरीर में लोहा, लकड़, पत्थर जैसी चीजें तक हजम करने की शक्ति प्राय: देखा गया है कि बहुत से लोग ब्लेड, पिन, कील, कांच के गिलास तोड़ कर खा जाते हैं। अभी हाल ही में अमेरिका में एक व्यक्ति ने ट्रक को तोड़कर खाना शुरू किया है उसका दावा है कि एक साल में वह पूरी ट्रक तोड़कर खा लेगा। अब तक एक चौथाई वह खा चुका है। इस प्रकार के लोग अपनी इस कला का प्रदर्शन करके लोगों को चकित भी करते हैं। डाक्टरी परीक्षण में देखा गया है कि इस प्रकार के सेवन से उनके शरीर में कोई अन्तर नहीं आया है। हाल ही में बलरामपुर के हस्पताल में एक लड़की का आपरेशन करके उसके शरीर से आधा किलो कीलें निकालीं गईं। ये कुछ उदाहरण मनुष्य की पाचन शक्ति की ओर संकेत करते हैं लेकिन प्रश्न यह है कि हजम करने के बाद जो कुछ रस या तत्व के रूप में बदलता है वह हमारे शरीर पर क्या प्रभाव डालता है यह बात देखने की है।

शरीर में कुण्डलिनी नामक स्थान में जहां सब कुछ खाया पीया एकत्रित होता है यह एक नाल के रूप में है। वैज्ञानिकों ने पाया है कि इसकी लम्बाई 36 से 49 मीटर तक की होती है। एक कुण्डली के रूप में हमारे शरीर में है। इसी कुण्डलिनी

में इतनी लम्बाई का दायरा पूरा कर भोजन दूसरे रूप में बलदता है। जो कुछ हम खाते पीते हैं वह सब हमारे शरीर में बट कर व्यर्थ के मल के रूप में निष्काषित हो जाता है। मनुष्य में क्या खराबी है उसकी जाँच इसी व्यर्थ के पदार्थ के द्वारा की जाती है। विज्ञान तब इस बात को बतला देता है कि किसी मनुष्य का क्या खान-पान है।

मनुष्य के शरीर की रचना को देखते हुए जो कुछ उसका शरीर बर्दाश्त कर सकता है वह ही प्रयोग में लाना उचित है। अगर हम किसी मशीन से अच्छी तरह और पूरे समय तक काम लेना चाहते हैं तो हमारे लिए आवश्यक है कि उसकी देख भाल रख रखा वे उचित ढंग से हो। बराबर बेरहमी से या लापरवाही से काम लेने पर वह या तो खराब हो जाती है अथवा बिगड़ जाती है। यही हाल शरीर का है अगर उसकी उचित साफ-सफाई और ठीक ढंग से भोजन न दिया जाए तो वह भी बिगढ़ सकता है। भोजन मनुष्य की एक आवश्यकता है इस रूप में नहीं कि पेट भरना मात्र वरन् इस रूप में भी उससे शरीर को क्या लाभ हो सकता है।

प्राय: देखा गया है कि जब हम उल्टा सीधा भोजन कर लेते हैं तो वह शरीर से तुरन्त बाहर निकल आता है। हमारी शरीर व्यवस्था उसे वर्दाश्त नहीं कर सकती। लेकिन और कुछ जो बलपूर्वक शरीर में चला जाता है, बाहर नहीं निकलता वह शरीर को बाद में कष्ट देने लगता है। मनुष्य के भोजन के कुछ नियम बनाए गए हैं। हमें क्या खाना चाहिए और क्या नहीं। इस विषय पर बहुत सा साहित्य और इस विषय पर डाक्टरों की वैज्ञानिकों की बेशुमार सलाहें हैं।

शाकाहारी और माँसाहारी दोनों प्रकार के भोजन बनाने की विधियाँ सुप्रचलित हैं। किस प्रकार उनका सेवन किया

जाए यह वतलाया गया है। लेकिन मनुष्य के हित में क्या आवश्यक है यह भी देखना जरूरी है। मनुष्य के अपने स्वाद की भी समस्या है वह हमेशा एक सा भोजन नहीं कर सकता। इसी कारण हमारे घरों में ग्रहणियाँ वदल-वदल कर भोजन वनाया करती हैं। इसी आवश्यकता के कारण नाना प्रकार के व्यंजन मनुष्य के समाज में प्रचलित हैं। आज हर देश का भोजन उस देश की प्राकृतिक स्थिति के अनुसार है। चीन में जो कुछ लोग खाते पकाते हैं वह अमेरिका से भिन्न है। भारत में जो कुछ लोग किस रूप में उपयोग करते हैं वह इन दोनों देशों से भिन्न हैं। इसके वावजूद एक देश का व्यक्ति दूसरे देश के व्यक्ति के भोजन के प्रति उत्सुक रहता है। देखा गया है कि वहुत से महानगरों में विदेशों में वनने वाले भोजन की डिसेस का प्रचार होता है। यह केवल इसलिए होता है कि वहां के लोग इस प्रकार के भोजन के प्रति आकृष्ट हो सकें। मनुष्य हर चीज का स्वाद लेना चाहता है और इस वात को भूल जाता है कि उसके लिए क्या हानिकर है और क्या लाभदायक।

भोजन के इस रूप के कारण यह सम्भव नहीं कि हर घर में एक चार्ट लटका हो कि किस प्रकार के पदार्थ में क्या गुण हैं? केवल सुनी सुनाई और मान्यता प्राप्त वस्तुयें ही खाई पकाई जाती हैं। माँस को या शाक सब्जी दोनों पर यही नियम लागू है।

समाज में भोजन पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता है जितना कि दिया जाना चाहिये। आज समय की पुकार है कि मानव के हित में इस ओर अधिकाधिक ध्यान दिया जाये जैसे वहुत पहले से हमारे देश में साधु सन्त इस विषय में वरावर वहुत कुछ कहते आये हैं और आज पाया गया है कि उनका यह कथन वहुत कुछ

अंशों में सही था। आज विज्ञान भी अनुसंधान के उपरान्त इसी निष्कर्ष पर पहुंचा है कि उनके द्वारा बतलाये गये रास्ते बिल्कुल सही और ठीक थे। आज सभी समाजवेताओं की इच्छा है कि हर मनुष्य सुख से रहे। आज सुख की खोज भी सबका लक्ष्य है। मनुष्य को सुखी रखने में आहार का बहुत बड़ा योगदान है। अतएव जो आहार हमें सुखी रख सके वही हमारे लिये उचित है।

उचित भोजन का निर्णय लेते समय मनुष्य की आर्थिक व्यवस्था को भी उपेक्षित नहीं किया जा सकता। उस दृष्टि से निम्नलिखित तुलना करने पर शाकाहार भोजन ही उचित है—

नं०	नाम पदार्थ	तौल	कीमत	प्रोटीन
	शाकाहार :			
1	सोयाबीन	100 ग्राम	18 P	43–2 ग्राम
2	भुनी मूँगफली	100 ,,	15 P	31–5 ,,
3	लोभिया	100 ,,	16 P	24–6 ,,
4	मूंग	100 ,,	15 P	24–0 ,,
5	उड़द	100 ,,	15 P	24–0 ,,
6	भुना मटर	100 ,,	16 P	22–9 ,,
7	भुना चना	100 ,,	15 P	22–5 ,,
	मांसाहार :			
8	मुर्गी का अण्डा	100 ग्राम (३ अंडे)	105 P	13–3 ग्राम
9	बकरी का मांस	100 ,,	45 P	18–5 ,,
10	मछली	100 ,,	45 P	22–6 ,,

माँसाहार भोजन में माँस मछली, अण्डे, मुर्गे, बकरे, खरगोश, बिल्ली जैसे जीव शामिल हैं। वैसे किसी भी धर्म में यह नहीं कहा गया है कि प्राणियों का वध किया जाये। स्वयं ईसा मसीह

ने कहा है मेरे शिष्यों तुम रक्त वहाना छोड़ दो अपने मुँह में मांस मत खाओ। ईश्वर बड़ा दयालु है उसकी आज्ञा है कि मनुष्य पृथ्वी से उत्पन्न होने वाले फल और अन्न से जीवन निर्वाह करे। ईसाई धर्म के दस आज्ञाकार में यह भी कहा गया है कि किसी भी प्राणी का वध मत करो। पैगम्बर मुहम्मद साहब पवित्र ग्रन्थ, हदीस में अपना कलाम फरमाते हैं कि सभी प्राणियों पर दया करो—

इरहमु मनफिल अर्दे यरहम फुमुर्रहमानु।

अर्थात्, दुनिया वालों तुम रहम करो क्योंकि खुदा ने तुम पर बड़ी मेहरबानी की है। कुरान शरीफ में, सूर्यबकर में, हज के वर्णन में लिखा है कि जानवरों को मारना बन्द करो। सन्त कबीर कहते हैं कि

इन झटका, उन बिसमिल कीना, दया दोहां से भागी।
कहत कबीर सुनो भई साधो, आग दोहां घर लागी॥

स्वयं गुरु नानक ने कहा है—मेरे शिष्यों तुम माँस और शराब का त्याग करो। नानक प्रकाश पूर्वाध अध्याय 55 में इस बात को कहा गया है।

जे रत्त लगे कपड़े, जामा होवे पतीत।
जो रत्त पीवे मानुषा, तिनको निर्मल चित्त।

आर्य समाज के संस्थापक दयानन्द जी सत्यार्थ प्रकाश समुलाश 12 में लिखते हैं कि माँस को खाने वाले व्यक्ति राक्षस होते हैं। भगवान महावीर ने भी कहा है—

सव्वे पाणा नियाउया, सुहसाया, दुक्खपडिकूला।
अप्पियवहा, पियजीविणो, जीविउकामा, सव्वेसिं जीवियं पियं।

बौद्ध मत के प्रवर्तक भगवान बुद्ध कहते हैं कि

पंचा इमा भिक्खवे वाणिज्य उपासकेन अकरणीया:।

मनुस्मृति में 5/45 में कहा गया है कि

अनुमन्ता, विशसिता, निहन्ता क्रय-विक्रयी ।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातका: ॥

महाभारत भीष्म युधिष्ठिर संवाद अनुशासन पर्व अध्याय के 116 में कहा गया है कि

इमे वे मानवा: लोके नृशंसा मांसगृद्धिन: ।
विसृज्य विविधान् भक्ष्यान् महारक्षो गणो इव ॥

पारसी मत में कहा गया है कि माँस खाने से चित्तवृतियां दूषित हो जाती हैं। इसके बावजूद हमारे समाज में माँसाहार का प्रचलन है।

अकेले भारत में ही प्राय; एक वर्ष में 3,34,12,500 मन माँस (33412500) का सेवन होता है। संसार के अन्य देशों के आंकड़े इससे भी भयानक हो सकते हैं। मूल बात यह है कि इनका सेवन कहाँ तक उचित या अनुचित है। विशलेषण के द्वारा पाया गया है कि माँसाहार करने वाले व्यक्ति और शाकाहारी व्यक्ति में बड़ा अन्तर होता है। मांसाहारी व्यक्ति प्राय: रोग-ग्रस्त और संक्षिप्त आयु का होता है शाकाहारी व्यक्ति स्वस्थ और दीर्घायु होता है। संसार के सबसे बूढ़े स्त्री और पुरुष प्राय: रूस में पाये जाते हैं। भारत में भी 120 वर्ष तक के व्यक्ति मौजूद हैं। मनुष्य की इस लम्बी आयु का रहस्य उनका खानपान ही है। रूस के सबसे बूढ़े व्यक्ति 130 वर्षीय श्री ए० पेरादोविच का कथन है कि उन्होंने अपने जीवन में कभी मांस या मदिरा का सेवन नहीं किया। उनके ही समान अन्य दीर्घायु वाले व्यक्तियों के भी कथन हैं कि मात्र सादा जीवन और शाकाहार के कारण ही वह उतनी लम्बी आयु पार कर सके हैं। इसका यही रहस्य इन लोगों ने उद्घटित किया है। उपरोक्त रूसी सज्जन इस उमर में भी बिना चश्मे की सहायता के लिख पढ़ सकते हैं। उनके सभी दांत भी सुरक्षित हैं। आज तक दीर्घायु वाला कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो मांसाहार का सेवन करता हो। यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है लेकिन विज्ञान ने बतला

दिया है कि शाकाहार और मांसाहार के लिये प्रयोग किये जाने वाले पदार्थों में क्या अन्तर है ? व्यापक अनुसन्धान के उपरान्त संयुक्त राष्ट्र संघ के "हर मनुष्य को भोजन" शीर्षक प्रचारित पुस्तिका में वताया गया है कि इन दोनों प्रकार के भोजन में क्या अन्तर है ?

मांसाहार का मनुष्य के शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसलिए जव भी कोई व्यक्ति वीमार पड़ता है तो डाक्टर उसको मांस व अण्डों का सेवन करना वन्द करा देते हैं और जव तक वह पूर्ण रूप से स्वस्थ नहीं हो जाता तव तक उसको शाकाहार पर ही रखते हैं।

डाक्टर रावर्ट ग्रोस और प्रोफेसर इरविन डेविडसन ने लिखा है कि "प्रत्येक मनुष्य के खून में लगभग 20 ग्रेन कोलेस्ट्रोल नामक अल्कोहल पाया जाता है, जो दिल की वीमारी पैदा करता है। अगर किसी कारण से शरीर में कोलेस्ट्रोल की मात्रा वढ़ जाये तो हाई व्लड प्रेशर आदि कई भयंकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं। एक अण्डे की जरदी में चार ग्रेन कोलेस्ट्रोल पाया जाता है। इसलिये अण्डे की जरदी मनुष्य के लिए हानिकारक होती है। अण्डे खाने से खून में कोलेस्ट्रोल की मात्रा वढ़ जाती है। इस कोलेस्ट्रोल की काफी मात्रा हमारे जिगर में जमा हो जाती है, फिर यह पित्त की थैली में पथरी को पैदा करती है। यह कोलेस्ट्रोल रक्त में मिलकर हृदय में रक्त ले जाने वाली नाड़ियों में जमा हो जाता है। इससे हाई व्लड प्रेशर जैसी वीमारियां, दिमाग की वीमारियां, जिगर की वीमारी, गुर्दे की सूजन, जोड़ों का दर्द आदि भयंकर वीमारियां पैदा हो जाती हैं। इसके विपरीत फल व सब्जियों में कोलेस्ट्रोल विल्कुल नहीं पाया जाता, अतः शाकाहार ही सर्वश्रेष्ठ है।

फ्लोरिडा विश्वविद्यालय (अमेरिका) के कृषि विभाग ने एक

स्वास्थ्य बुलेटिन में बताया था—'अण्डे में हानिप्रद विषाण (वाइरस) होते है।

केलिफोर्नियां के दो वैज्ञानिकों—डा० कैथरीन निम्मों तथ डा० जे० अमेन ने सिद्ध किया है कि—

अण्डे खाने से उच्च रक्त चाप पैदा होता है और पाचन गड़बड़ हो जाता है। यही नहीं, इससे गुर्दे में पथरी बन जाती है, तथा आमाशय, आंत और रक्त-नलिकाओं में घाव हो जाते हैं। आमाशय और आंतों के घाव तमाम रोगों के जीवाणुओं को रोग फैलाने का अवसर प्रदान करते है। घायल आंतों में पेचिश के कीटाणु पनपते हैं, अतः पेच्चिश के लिए भी अण्डों का सेवन उत्तरदायी है। अण्डों का सेवन करने वालों की रोगों से बचने की शक्ति क्षीण हो जाती है।'

एक प्रसिद्ध डाक्टर ई० वी० मेककालम ने 'नेवर नोलेज ऑफ न्यूटरीशन' के पृष्ठ 171 पर लिखा है, 'अण्डों में कैलशियम की बहुत कमी होती है और कार्वोहाइड्रेट्स तो होते ही नहीं। इस कारण यह बढ़ी आंतों में जाकर सडांध मारते हैं और सड़ने वाले कीटाणुओं को बढ़ावा देकर भयंकर बीमारियों को पैदा करते हैं।'

उन्होंने अपना एक अनुभव भी लिखा है, ' कुछ बन्दरों को जब अण्डे खिलाये गये तो उनके शरीर में सडांध पैदा करने वाले बैक्टीरिया पैदा होने लगे। वे बन्दर सुस्त हो गये। उन्होंने अपने सिरों को झुका दिया और वे बुद्धू से बन गये। उनका पेशाब रूक-रुक कर सड़ कर व गहरे रंग का आने लगा। जब उन्हें ग्लुकोज दिया गया तब वे फिर ठीक हो गये। इस प्रकार जैसे शाकाहारी बन्दरों आदि पशुओं को अण्डे माफिक नहीं आते, उन्हें बीमार कर देते हैं, उसी प्रकार शाकाहारी मनुष्य के लिए भी अण्डे कभी माफिक नहीं आ सकते।'

अनेक डाक्टरों का यह अनुभव है कि जब पशुओं को अण्डों

की सूखी सफेदी खिलाई गई तो उनमें से कुछ को लकवा मार गया, कुछ को कैंसर हो गया और बहुतों को चर्म रोग हो गया। इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया है कि अण्डे का सबसे हानिकारक भाग अण्डे की सफ़ेदी है।

लन्दन के एक बहुत प्रसिद्ध डाक्टर मि० हैग कहते हैं, 'मांस में यूरिया और यूरिक एसिड नाम के दो बहुत ही भयानक विष पाये जाते हैं जो मनुष्य के शरीर में जाकर भयानक रोगों को उत्पन्न करते हैं।' उन्होंने लिखा है, 'आगे लिखे प्रत्येक प्रकार के मांस की आधा किलो मात्रा लें तो काड मछली में चार ग्रेन, यलीस मछली में छह ग्रेन, गाय की खाल में सात ग्रेन, गाय की पसली में आठ ग्रेन, सुअर की कमर तथा रान में आठ ग्रेन, तुर्की मुर्गी में आठ ग्रेन, चूजे में नौ ग्रेन गाय की पीठ तथा पीछे के अंग में नौ ग्रेन, गाय के भूने मांस में चौदह ग्रेन, गाय के यकृत में उन्नीस ग्रेन और मांस के रस में पचास ग्रेन यह भयंकर विष पाया जाता है। दालों में व वनस्पतियों में इस विषय की मात्रा बहुत ही कम अर्थात न के बराबर ही होती है। पनीर, दूध से बने पदार्थों, चावल व गोभी आदि में यूरिक एसिड बिलकुल भी नहीं पाया जाता।'

यही डाक्टर आगे लिखते हैं, 'जब यह विष मनुष्य के रक्त में मिल जाता हैं तब यह विष दिमागी बीमारियाँ, हिस्टीरिया, सुस्ती, नींद का अधिक आना, सांस रोग, जिगर की खराबी, अजीर्ण रोग, शरीर में रक्त की कमी आदि बहुत सी बीमारियों को पैदा करता है। यह विष जब किसी गांठ या जोड़ में रुक जाता है तो वात रोग, गठिया वाय, नाक और कलेजे की दाह, पेट के विभिन्न रोग, शरीर के विभिन्न दर्द, मलेरिया, निमोनिया, इन्फ्लुएंजा और क्षय रोग उत्पन्न करता है।'

डाक्टर हैग और आगे लिखते हैं, 'मांस में कैलशियम की

बहुत कमी होती है और कार्वोहाइड्रेट्स के नितान्त अभाव के कारण मांस पेट में जाकर सड़ता है और अण्डे की तरह यह भी सड़ांघ पैदा करने वाले कीटाणुओं को बढ़ावा देता है, इससे गैस की भयंकर बीमारियां पैदा हो जाती है।'

डाक्टर जोशिया आल्डफील्ड डी० सी० एम० ए०, एम० आर०, सी० उल० आर०, सी० पी० सीनियर फिजीशियन मार्गरेट हास्पिटल, आमले का भी यही अनुभव है कि मांस, मछली व अण्डे अप्राकृतिक भोजन है। इनसे शरीर में अनेक भयंकर बीमारियां जैसे कैंसर, क्षय, ज्वर, यकृत, मृगी, वात रोग, पादशोथ, नासूर आदि उत्पन्न हो जाते हैं। कोलगेट यूनिवर्सिटी (यू० एस० ए०) के एक वैज्ञानिक श्री ल्यार्ड ने अपने परीक्षणों के आधार पर लिखा है कि माँस में कैलशियम, कार्वोहाइड्रेट्स नहीं होते, इस लिए उसे खाने वाले चिड़चिड़े, क्रोधी, निराशावादी और असहिष्णु बन जाते हैं। शाकाहारी में कैलशियम और कार्वोहाइड्रेट्स की मात्रा काफी होती है, इसलिए शाकाहारी प्रसन्नचित्त, आशावादी, सहनशील व शान्तिप्रिय बनते हैं। कठिनाइयाँ उनके साहस और धैर्य को बंधाती हैं। वे नरक में भी स्वर्ग के विचार रखते हैं।

दो अमेरिकी डाक्टरों डा० ए० वाचमन और डा० डी० एस० वर्नस्टीन ने सिद्ध किया है कि मांसाहार से हड्डियाँ क्रमशः कमजोर होती हैं और गलने लगती हैं। शाकाहारियों की हड्डियाँ मांसाहारियों की अपेक्षा अधिक मजबूत होती हैं। डाक्टर अलेक्जेंडर हैक ने इस तथ्य की पुष्टि की है।

इंग्लैंड के नगरों और गावों का निरीक्षण करने के पश्चात् मि० किंग्सफोर्ड और मि० हेनरी ने लिखा है, 'प्राचीन काल में अंग्रेज लोग अत्यन्त बलिष्ठ, स्वस्थ, सुगठित शरीर वाले और अधिक परिश्रमी होते थे, परन्तु जब से उनके भोजन में प्राकृतिक पदार्थों के स्थान पर मांस, मदिरा, अण्डे व मछली ने अधिकार कर लिया है तब से उनका स्वास्थ्य व शक्ति धीरे-धीरे घट रही

है। पच्चीस वर्ष की अवस्था में ही उनके शरीर का अधःपतन हो जाता है। यह भी देखने में आया है कि मांसाहारी परिवारों के लड़के-लड़कियों का स्वास्थ्य बहुत गिरा हुआ होता है। उनमें हृदयरोग व कैंसर की शिकायतें पायी गई। 'अपनी प्रजा के गिरते हुए स्वास्थ्य को देखकर इंग्लैंड की सरकार की ओर से ब्रिटिश बोर्ड ऑफ एग्रीकल्चर ने समाचार पत्रों द्वारा एक लेख से अपनी अंग्रेज प्रजा को चेतावनी दी थी—'मांसाहार छोड़कर उसके बदले दूध, पनीर और मसूर की दाल का प्रयोग करो, जो मांस के समान शरीर में मांस पैदा करते हैं और मूल्य में सस्ते हैं। शाक और फल फूलादि का अधिक प्रयोग करो।'

मांसाहार के भयंकर परिणामों और ऐसी चेतावनियों के कारण पश्चिमी देशों में सैंकड़ों शाकाहारी सोसाइटियों की स्थापना हुई है और वहाँ के निवासी अधिकाधिक संख्या में शाकाहार को अपनाते जा रहे हैं। कहा जाता है कि केवल अमरीका में ही चार करोड़ व्यक्तियों से अधिक शाकाहारी हैं, और यह संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

फ्रांस के एक विद्वान श्री किग्सन फोर्ड ने लिखा है—'यहाँ के लोगों का स्वास्थ्य और शरीर का बल पाशविक भोजन के कारण दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा है।' अब वहाँ पर भी लोग शाकाहार की ओर बढ़ रहे हैं।

किम्बरलेंड के देहातों की अवस्था पर मि० रमाइल ने लिखा है—'जो व्यक्ति दूध, पनीर, फल, रोटी और सब्जियों का प्रयोग करते हैं वे मांस मदिरा का सेवन करने वालों से अधिक स्वस्थ बलवान और परिश्रमी पाये जाते हैं।'

मैक्सिको के निवासी साधारण अनाज की रोटियों और फलों का सेवन करते हैं, परन्तु वे शरीर से इतने शक्तिशाली होते हैं कि मांस का सेवन करने वाले मजदूर उनका किसी

प्रकार भी मुकाबला नहीं कर सकते । इन शाकाहारियों की शक्ति को देखकर आश्चर्य होता है ।

माल्टा के निवासी बहुत मोटे ताजे होने पर भी खूब बलवान होते हैं, क्योंकि वे लोग सब्जी, फल व रोटी का सेवन करते हैं ।

अमरीका के दिवान श्री चैंस ने स्मरना निवासियों के सम्बन्ध में लिखा है कि वे बहुत मजबूत व बलवान होते हैं । वहाँ का एक-एक आदमी पाँच-पांच मन वजन तक का बोझा उठा सकता है इसका कारण यही है कि वे लोग फल और बहुत साधारण भोजन करते हैं ।

कप्तान सी एफ० ने हस्तिपानियाँ में मुर के मजदूरों की दशा देखकर लिखा है कि इनके शरीर में शक्ति होती है और वे बड़ा भारी बोझ उठाते हैं । कारण कि वे लोग गेहूं की रोटियों के साथ अंगूर खाते हैं ।

डा० बुक ने नार्वे के लोगों के विषय में लिखा है कि वे सदा प्रसन्नचित्त, दीर्घायु और स्वस्थ पाये जाते हैं कारण कि वे लोग मांस व अण्डों से बड़ी सख्त घृणा करते हैं ।

यूनान के एक समाचार पत्र में लिखा है कि जबसे यहां के निवासियों ने शाकाहार छोड़कर माँस-मदिरा का सेवन शुरू कर दिया है तब से यूनान के लोग सुस्त और निकम्मेपन के लिये प्रसिद्ध हो रहे हैं । इन लोगों को चाहिये कि स्वास्थ्य के लिए मांस-मदिरा रहित भोजन, हरि सब्जी, फल, मेवे प्रनाज और दूध का सेवन करें ।

डाक्टर आनन्द निमल सूरिया ने खोज के पश्चात् लिखा है कि माँस पशु-पक्षियों को तड़फाकर मारने पर मिलता है । जब पशु-पक्षियों को निर्दयता से मारा जाता है तब वह तड़पते हैं, ..ी होते हैं, और भयभीत होते हैं । ये बुरी भावनाएं उनके

शरीर में रासायनिक परिवर्तन करके उनके मांस व खून को अम्लोत्पादक बना देती है। इसके अतिरिक्त मरे हुये पशुओं की रक्तनली के विषैले पदार्थ प्रोटीन को गन्दा कर देते हैं। डाक्टर साहब आगे लिखते हैं कि उन्होंने मरे हुये व मारे हुये पशुओं के मृत शरीरों को माइक्रोस्कोप से देखा हैं जिससे मालूम पड़ा है कि उसकी आंखे विपैले कीटाणुओं से भरी पड़ी है। मांस को उवालने पर भी खुर्दवीन से परीक्षण करने पर उसमें बहुत सारे भँयकर कीटाणु पाये गये, जो शरीर में सैंकड़ों बीमारियाँ पैदा करते हैं। इसलिये शुद्ध व बढ़िया प्रोटीन तो दालों, ग्रनाजों व दूध में ही पाया जाता है।

यहाँ एक बात ग्रौर विचारणीय है। माँसाहारी व्यक्ति केवल शाकाहारी पशुओं-यथा भेड़, बकरी, गाय, ऊंट, मछली, मुर्गे आदि का ही मांस खाते हैं। माँसाहारी पशुओं-यथा शेर, चीते, भेड़िये आदि का माँस कोई नहीं खाता, क्योंकि इन मांहारी पशुओं का मांस विपैला होता है। इस तथ्य से भी यह स्पप्ट है कि माँसाहारी हमारे शरीर में विप पैदा करता है, जबकि शाकाहार हमारे शरीर को शुद्ध करता है।

'वर्ल्ड हैल्थ आर्गेनाइजेशन' की विशेप समिति ने सर्वेक्षण द्वारा यह निष्कर्प निकाला है कि 22 विकसित और समृद्ध देशों में जहां कि मुख्य रूप से मांसाहार किया जाता है, प्रति एक लाख व्यक्तियों में 400 से अधिक व्यक्ति हृदय रोगों से मरते हैं। यह संख्या फिसलैंड में सबसे अधिक अर्थात् 422 है' जबकि ऐशियाई देशों में अपेक्षाकृत बहुत कम है। जापान में 1 लाख व्यक्तियों में सिर्फ 51 व्यक्ति हृदय रोगों से मरते हैं। सौभाग्य से यह संख्या भारत में अभी 42 तक ही पहुंची है। और निश्चय ही इसका श्रेय भारत की शाकाहारी पद्धति को है।

इन कारणों के अतिरिक्त सर्वेक्षणों से यह तथ्य भी प्रकाश में आया है कि जिन विकसित और समृद्ध देशों में जितनी

अधिक मोटर कारें हैं और वहां के निवासी जितनी अधिक सिगरेटें पीतें हैं, दिल के दौरे के रोगी वहां इतने ही अधिक हैं।

जर्मन के एक प्रसिद्ध विद्वान मि० हैकल ने लिखा है कि जहां तक परीक्षा से मालूम हुआ है मनुष्य और वनमानुष के शरीर की बनावट आपस में मिलती है। हमारे शरीर की भांति उसके भी हड्डियाँ व नसें होती हैं। मनुष्य के आमाशय में पाचन क्रिया के लिये जो विशेषता पाई जाती हैं वही वनमानुष में भी होती है। वनमानुष फल और शाक-शब्जी खाते हैं अतः मनुष्य का भी यही आहार होना चाहिये। इसी कारण मनुष्य प्राकृतिक रूप से शाकाहारी है, मांसाहारी नहीं।

फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान श्री पियर गेसेण्डी का कहना है कि मनुष्य के जीवन का पूर्ण अध्ययन करने के पश्चात् मैं यह निर्णय दे सकता हूं कि मनुष्य शाकाहारी प्राणी है।

बहुत से अन्य विद्वानों डाक्टरों, वैज्ञानिकों तथा शरीर शास्त्र के ज्ञाताओं ने विचार व्यक्त किये हैं कि मनुष्य के दांत, नाखून, शारीरिक ढांचा, जबड़ा, आतें तथा पाचन यन्त्र और उसके खाने-पीने के ढंग को देखकर निर्विवाद कहा जा सकता है कि मनुष्य शाकाहारी प्राणी है, यहां यह बता देना उपयोगी होगा कि प्रकृति ने शाकाहारी प्राणियों को लगभग 15 मीटर लम्बी आंत प्रदान की है जबकि मांसाहारियों की आंत छोटी होती है।

एक बात और जो व्यक्ति हृदयहीन होकर एक निर्बल और मूक पशु की गर्दन पर छुरी चलाता है, उसको तड़प-तड़प कर मरते हुए देखता है, वह इतना निर्दयी हो जाता है, कि वह मनुष्य को भी पशु से अधिक नहीं समझता और स्वार्थवश

मनुष्य की हत्याएं करते हुये भी उसको, कोई झिझक नहीं होती। इसी कारण मांसाहार की अधिकता के साथ-साथ मनुष्यों की हत्यायें भी बढ़ती जा रही हैं।

एक प्रश्न यह उठता है कि हम मांसाहार क्यों करें ? जब हम अनाज, फल, सब्जी, मेवे उत्पन्न कर सकते हैं तब मांसाहार का आधार ही क्या रह जाता है ? जिस प्रदेश में अनाज का उत्पादन कम होता है, या नहीं होता है, आज के युग में वहां भी दूसरे स्थानों से वहुत आसानी से अनाज भेजा जासकता है। फिर जहाँ परअनाज प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होता है वहां का तो कहना ही क्या है। क्या हम केवल जिव्हा के स्वाद के लिये निर्वल व मूक प्राणियों की हत्या करते रहें ? परन्तु मास स्वयमेव में इतना स्वादिष्ट नहीं होता, उसमें स्वाद तो घी व मसालों द्वारा पैदा किया जाता है। अतएव हम शाकाहार को भी वहुत अधिक स्वादिष्ट वना सकते हैं। फिर समझ में नही आता कि मांसाहार करने में क्या तुक या अच्छाई है ?

अहिंसा व शाकाहार के सम्बन्ध में धर्मशास्त्रों में लिखे हुऐ एवं महापुरुषों द्वारा कहे हुवे विचार

'मैं मर जाना पसन्द करुंगा, परन्तु मांस कभी नहीं खाऊंगा। पशुओं का मांस खाना घोर नैतिक पतन है।'

'चाहे कुछ भी हो, धर्म हमें अण्डे, मछली, मांस खाने की आज्ञा बिल्कुल नहीं देता।'

'मैं मांस नहीं खाऊंगा, शराब नहीं पीऊंगा, पर स्त्री संग नहीं करुंगा।' —महात्मा गांधी

महात्मा बुद्ध स्वयं लंकावतार सूत्र में मांस भक्षण परिवर्तो नामक आठवें अध्याय में कहते हैं—

'यह मांस दुर्गन्धमय है। मलेच्छों द्वारोवित है। आर्यजनों द्वारा त्याज्य है। आर्यपुरुष मांस और खून का आहार नहीं करते, क्योंकि यह अभक्ष्य और घृणा से भरा है।'

'मांस-भक्षण से साधुपना अथवा ब्राह्मणपना नष्ट हो जाता है। मांसाहारी दूसरे के प्राणों को जबरदस्ती लेने के कारण डाकू है।'

'जो प्राणी लोभ के वशीभूत होकर दूसरे के प्राणों को हरते हैं अथवा मांस की पैदावार बढ़ाने में धन का योगदान करते हैं वे पापी हैं, दुष्ट हैं और घोर नरक में जाकर महान् दुःख उठाते हैं।'

'मैं मानता हूं, जो व्यक्ति दूसरों का मांस खाता है वह सचमुच अपने बेटे का मांस खाता है।'

'मांस खाने से कोढ़ जैसे अनेकों भंयकर रोग फूट पड़ते हैं।

शरीर में खतरनाक कीड़े व जन्तु पैदा हो जाते हैं, अतः मांस भक्षण का त्याग करें।'

'हे महामते मैं यह आज्ञा कर चुका हूं कि पूर्व ऋषिप्रणीत भोजन में चावल, जौं, गेहूं, मूंग, उड़द, घी, तेल, दूध, शक्कर, खाण्ड, मिश्री आदि लेना ही योग्य है।'

'मैंने किसी भी सूत्र में मांस को सेवन योग्य नहीं कहा है और न खाने की ही आज्ञा दी है, न केवल उत्तम भोजन कहा है।'

विश्वप्रसिद्ध ग्रन्थ महाभारत में लिखा है—

'हे अर्जुन···' जो शुभ-फल प्राणियों पर दया करने से प्राप्त होता है, वह फल न तो वेदों से, न समस्त यज्ञों के करने से और न किसी तीर्थवन्दन अथवा स्नान से हो सकता है।'

—महाभारत, शान्ति पर्व, प्रथम पर्व

ये लोग जो तरह-तरह के अमृत से भरे शाकाहारी उत्तम पदार्थों को छोड़कर मांस आदि घृणित पदार्थ खाते हैं वे सचमुच राक्षस की तरह दिखाई देते है।'

'जो दूसरों के मांस से अपना मांस बढ़ाना चाहता है उस निर्दयी से बढ़कर कोई क्षुद्र व्यक्ति नहीं है।

—महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय 116

मनुस्मृति में लिखा है—

'मारने की सलाह देने वाला, मरे प्राणियों के शरीर को काटने वाला, मारने वाला, मोल लेने वाला, बेचने वाला, पकाने वाला, परोसने वाला और खाने वाला—ये सबके सब पापी और दुष्ट हैं।'

'जिसका मांस मैं यहाँ खाता हूं (मां) मुझको (सः) वह भी दूसरे जन्म में अवश्य खाएगा।'

—मनुस्मृति 555

चाणक्यनीति में लिखा है—

'मांस खाने वाले, शराब पीने वाले, बिना पढ़े-लिखे, मूर्ख पुरुष, पशु के समान होते हैं। इनसे धरती माता सदैव दुःखी रहती है।'

स्वामी दयानन्द जी सरस्वती के विचार हैं—

'मांस का प्रचार करने वाले सब राक्षस के समान हैं। वेदों में कहीं भी मांस खाने का उल्लेख नहीं है।'

—सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास 12

शराबी और मांसाहारी के हाथ का खाने में भी शराब, मांसादि के खाने-पीने का दोष लगता है।'

'जो लोग मांस और शराब का सेवन करते हैं उनके शरीर, वीर्य आदि धातु दुर्गन्ध के कारण दूषित हो जाते हैं।'

—सत्यार्थ प्रकाश, सम्मुल्लास 10

'हे मांसाहारियों : जब कुछ काल पश्चात् पशु न मिलेंगे तब तुम मनुष्यों का मांस भी छोड़ोगे या नहीं।'

—स्वामी दयानन्दजी सरस्वती,
गौर—करुणानिधि

'गऊ आदि पशुओं का नाश होने से राजा और प्रजा दोनों का नाश हो जाता है।'

—स्वामी दयानन्द सरस्वती
'गो रक्षा ही राष्ट्र रक्षा है'

'जो लोग अण्डे, मांस खाते हैं, मैं उन दुष्टों का नाश करता हूं।'

—अथर्ववेद, काण्ड 8, वर्ग 6, मंत्र 13

'हे अग्नि : मांस खाने वालों को अपने मुंह में रख।'

ऋग्वेद 10-87-2

हे मित्र : जो पशु का मांस खाते हैं उनके सिर फोड़ डालो।'

—ऋग्वेद 10-87-16

गुरु नानक देव के विचार हैं—

'सब राक्षस जैसे क्रूर पुरुषों को प्रभु का नाम जपाया। उनसे मांस खाने की आदत छुड़वाई उन राक्षसों पुरुषों ने जीवों को वध करने की आदत छोड़ दी। सच कहा है महात्माओं की संगति सुख देने वाली होती है।'

—नानक प्रकाश (पुर्वार्ध-अध्याय 55
देयलूत राक्षस का प्रसंग)

'हम तुम्हारे यहां भोजन कदापि नहीं कर सकते, क्योंकि तुम सब जीवों को दुख देने वाले हो। सबसे पहले तुम मांस खाना छोड़ो, जिस कारण तुम्हारा जीवन नष्ट हो रहा है। दुख देने वाली तामसी वृत्ति को छोड़कर सुखकारी प्रभु की भक्ति में लग जाओ।'

—नानक प्रकाश, पूर्वार्ध, अध्याय 55

'कपड़े पर खून लगने से कपड़ा गन्दा हो जाता है। वही घृणित खून जब मनुष्य पीवेगा तब उसकी चित्तवृत्तियां अवश्य ही दूपित हो जायेंगी।'

—गुरु नानकदेव, वार मांझ, महल्ला-1

'जीवों पर दया करना सबसे बड़ा धर्म है। वह पुरुष उत्तम है जो दूसरों पर दया करता है।'

—मांझ महल्ला-5 वारां माह (माघ माह)

'जो व्यक्ति मांस, मछली और शराब का सेवन करते हैं उनका धर्म, कर्म, जप, सब कुछ नष्ट हो जाते हैं।'

—गुरु ग्रन्थ साहब

'यदि जीवों का वध करने में धर्म है तो हे भाई : पाप किसे कहेंगे ? यदि जीव-वध करने वाला अपने आपको मुनि समझे तो कसाई किसे कहेंगे।'

—कबीर वाणी

ईसाई धर्म का उपदेश है—

'किसी प्राणी की हत्या मत करो।'

—प्रभु की पाँचवीं आज्ञा

'जब तुम्हारे पिता-प्रभु दयाल हैं तब उसकी सन्तान तुम भी दयावान बनो, अर्थात् किसी को मत सताओ।'

—(सेण्ट ल्युकस, न्यू वैस्टामैंट 36-6)

'देखो मैंने पृथ्वी पर सब प्रकार की जड़ी-बूटियां तथा उनके बीज दिये हैं और साथ में तरह-तरह के फलों से लदे पेड़ पौधे भी दिये हैं तथा उनके बीज भी उन सब शाकाहारी पदार्थों को खाओ, वे तुम्हारे लिये मांस का काम देंगे।'

'तुम मेरे पास सदैव एक पवित्र आत्मा होओगे यदि तुम किसी का भी मांस न खाओ।'

पारसी धर्म में भी हिंसा का निषेध है—

'इस तरह जो कोई किसी पशु को मारेगा उसको परमात्मा स्वीकार नहीं करेगा। पैगम्बर एसपंदरमद ने कहा है—हे पवित्र मानव : परमात्मा की यह आज्ञा है कि पृथ्वी का मुख रुधिर, मैल व मांस से पवित्र रक्खा जाय।'

—(जरतुश्तनामाद्र-95)

मुस्लिम धर्म में भी हिंसा का निषेध है—

किसी भी तरह का मांस परमात्मा को नहीं पहुंचता है न उनका रक्त परन्तु जो कुछ दया तुम पालोगे वही वहां पहुंचती है।

हम अनादि काल से विभिन्न योनियों में शरीर धारण करते हुए सुख और दुख भोग रहे हैं। इन सुख व दुख भोगने के लिये हमारे द्वारा पूर्व के किये हुए अच्छे व बुरे कार्य ही उत्तरदायी हैं। ये अच्छे व बुरे कार्य हम अपने अनादिकालीन अज्ञान और हिंसा, राग, द्वेष, मान-माया, लोभ, मोह आदि की भावनाओं के

कारण ही करते रहते हैं। यदि हमको सुख भोगने से छुटकारा पाकर, अनन्त और सच्चा सुख प्राप्त करना है तो हमें अपना अज्ञान तथा इन क्रोध, मान, माया, लोभ आदि की भावनाओं को छोड़ना पड़ेगा। मनुष्य योगिन के अतिरिक्त पशु-पक्षियों की योनियों में न तो हम में इतनी शक्ति होती है और न इतना ज्ञान व विवेक, कि हम अपना अच्छा व बुरा सोच व समझ सकें। संसार में लाखों योनियों में केवल मनुष्व योनि ही ऐसी योनि है जव हम अपना भविष्य सुधारने और सच्चा सुख प्राप्त करने का प्रयत्न कर सकते हैं। इस मनुष्य जन्म में भी अपनी भलाई की बात सुनने व जानने का अवसर कितने मनुष्यों को मिलता है? यदि भलाई की वात सुनने का अवसर मिल भी जाये, तो उस बात को सुनने, समझने तथा उस पर आचरण करने का प्रयत्न कितने व्यक्ति करते है? फिर इन प्रयत्न करने वालों में भी कितने व्यक्तियों को इतनी सुविधा व साधन उपलब्ध होते हैं जो अपने मन, वाणी व कार्यरुप से उस वात पर आचरण कर लेते हैं। इतनी सब अनुकुलताएं उपलब्ध होने पर भी यदि हम अपना भविष्य नहीं सुधारते और मुक्ति प्राप्त करने के मार्ग पर अग्रसर नहीं होते तो हमसे अधिक अभागा और मूर्ख कौन होगा? पैदा होना, खाते-पीते रहना, इन्द्रियों के विषय सेवन करते रहना और अन्ततः मर जाना—क्या यही मनुष्य जीवन की उपलब्धि है? ये सब कार्य तो पशु-पक्षी भी करते हैं। फिर मनुष्य और पशु-पक्षी में क्या अन्तर है? वास्तव में यह मनुष्य जन्म तो उस जंकशन अथवा चौराहे के समान है, जहां से हम जिधर भी चाहें, जा सकते हैं। मनुष्य जन्म प्राप्त कर हम इस संसार तथा अपना आत्मा का सच्चा स्वरुप जानकर हिंसा, राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोह, मान, माया, लोभ आदि की भावनाओं का त्याग कर, संयम व तप के द्वारा अपने कर्मों को नष्टर करके, अपनी आत्मा के कल्याण की ओर मुक्ति, की ओर भी अग्रसर हो सकते हैं और

इसके विपरीत अपने अज्ञात और अपनी राग-द्वेप की भावनाओं के कारण चिरकाल के लिये पशु-पक्षी आदि की नीच योनियों में भी गिर सकते हैं। एक बार इस मनुष्य योनि को व्यर्थ गंवा देने पर न जाने कितने काल के पश्चात् हमें यह मनुष्य जन्म फिर से प्राप्त हो ?

एक बात और हमें इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि अभी तो हम स्वस्थ व जवान है, मृत्यु के आने में अभी बहुत समय है, अतः बुढ़ापा आने पर धर्म-कर्म की बातें सोच लेंगे। इसके विपरीत हम यह निश्चित समझ लें कि मृत्यु का कोई समय नियत नहीं होता। वह बुढ़ापे में भी आ सकती है और जवानी में भी। अतः हमको निश्चिन्त होकर नहीं बैठना चाहिए, अपितु हर समय मृत्यु के स्वागत के लिये तैयार रहना चाहिये। मृत्यु के समय हमें यह पश्चाताप नहीं हो कि कुछ समय और मिल जाता तो हम अपने आत्म-कल्याण के लिये कुछ कर लेते। अतः मनुष्य जन्म की सार्थकता इसी में है :

—कि हम सदैव शुद्ध, सात्विक व शाकाहारी भोजन ही सेवन करें, जिससे हमारा शरीर, मन व बुद्धि सदैव स्वस्थ बने रहें,

—कि हम किसी भी जीव को किसी भी प्रकार का कष्ट देने का विचार भी अपने मन में न लावें,

—कि हम सदैव परोपकार में लगे रहें,

—कि हम इस संसार, अपने शरीर व आत्मा की वास्तविकता को जानकर सदैव अपनी आत्मा के कल्याण में तत्पर रहें।

रात्रि भोजन

हिंसा से वचनें, अहिंसा धर्म का पालन करने और अपने स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए रात्रि में भोजन करना उचित नहीं है। रात्रि भोजन के पक्ष में कुछ व्यक्ति यह तर्क देते है कि जब रात्रि में विद्युत प्रकाश द्वारा दिन का सा उजाला हो सकता हैं तो रात्रि में भोजन करने में कोई बुराई नहीं।

किन्तु उनका यह विचार तर्क संगत नहीं प्रतीत होता। विद्युत के कृत्रिम प्रकाश द्वारा और सूर्य के प्राकृतिक प्रकाश में वहुत अन्तर है। वरसात के मौसम में दिन के समय विजली की रोशनी पर एक भी मच्छर नहीं आता परन्तु रात्रि होने के समय उसी रोशनी पर हजारों मच्छर इकट्ठे हो जाते है। सूर्य के प्रकाश में जितनी अच्छी तरह से वस्तुएं दिखाई देती है, वैसी विजली की रोशनी में कभी दिखाई नहीं दे सकती।

दिन के समय में आक्सीजन की मात्रा अधिक होती है जो हमारे पेट में पड़े भोजन को जल्द पचाने में सहायता करती है। सूर्य का प्रकाश कीटाणुओं का नाशक होता है, जवकि रात्रि का अन्धकार कीटाणुओं की वृद्धि में सहायक होता है। विजली का कृत्रिम प्रकाश भी इन कीटाणुओं की वृद्धि को नहीं रोक सकता। वहुत से कीड़े ऐसे होते है जो दिन में तो अंधेरे कोनों में छिपे रहते है, परन्तु रात को उन कोनों से निकलकर वे उछलकूद करने लगते है। रात्रि में भोजन वनाते और भोजन खाते समय ऐसे कीड़े और रात्रि को ही उत्पन्न होने वाले अन्य कीड़े, पतंगे और कीटाणु हमारे भोजन में गिर पड़ते हैं और भोजन को विषैला वना देते है। समाचार-पत्रों में इस प्रकार विषैले हुए भोजन खाने से हुई मृत्युओं के समाचार प्रायः पढ़ने को

मिलते है।

स्वास्थ की दृष्टि से भी देखा जाये तो हमें अपना भोजन सोने से तीन-चार घण्टे पूर्व ही कर लेना चाहिये, जिससे कि सोने के समय तक हमारा किया हुआ भोजन हजम हो जाये। यदि सोने के समय तक भोजन हजम नहीं होता तो वह अमाशय में पड़ा सड़ता रहता है और रोग उत्पन्न करता है। आजकल पेट की बीमारियों के बढ़ने का मुख्य कारण यह रात्रि भोजन ही है। यदि हम रात्रि भोजन न करके दिन में ही भोजन कर लिया करें तो पेट में होने वाले कम से कम नव्वे प्रतिशत रोग उत्पन्न ही न हों।

यदि कोई रात्रि-भोजन व मांसाहार के आधार पर रोगियों का सर्वेक्षण करे तो यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि मांसाहार व रात्रि भोजन करने वाले और शाकाहार व दिवा भोजन करने वाले रोगियों का अनुपात कम से कम बीस व एक का अवश्य होगा। यदि पशु-पक्षियों को दिन के समय भूखा न रखा गया हो तो वे रात को कभी नहीं खाते। इससे स्पष्ट है कि प्राकृति रूप से भी रात्रि भोजन उचित नहीं है। बहुत पुराने समय से अंग्रेजी में एक कहावत प्रचलित है—

Early to bed and Early to rise,

Makes a man healthy, wealthy and wise.

इसका अर्थ यही है कि जल्दी सोना व जल्दी उठना मनुष्य को स्वस्थ, धनवान व चतुर बनाता है।

हम जल्दी उसी दशा में सो सकते है जबकि भोजन जल्दी ही अर्थात् दिन छिपने से पहले ही कर लें। ऐसा करने से हमारा भोजन तीन-चार घण्टे में पच जायेगा और हम नौ-दस बजे के बीच आसानी से सो सकेगें। किसी भी शरीर-विज्ञान शास्त्र में ऐसा नहीं लिखा है कि व्यक्ति को रात्रि में भोजन करना

चाहिए। सब जगह यही लिखा है कि सोने के समय तक हमारा खाया हुआ भोजन पच जाना चाहिए और ऐसा तभी हो सकता है जब हम दिन में ही भोजन कर लें।

रात्रि-भोजन-त्याग से एक लाभ और भी है। ऐसा करने से मांसाहार व विशेषकर मदिरा पान में भी अपने आप ही कमी आ जायेगी। आजकल रात्रि भोजन के साथ ही मासांहार व मदिरापान का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। दिन के समय तो किसी को इतनी फुर्सत नहीं होती कि वह घण्टे दो घण्टे मांस व मदिरा सेवन पर नष्ट करे। इसलिए इन अनर्थकारी पदार्थों का सेवन अधिकांशतया रात को फुरसत से ही किया जाता है अतः यदि रात्रि-भोजन का त्याग कर दिया जाय तो दुर्व्यसन स्वयंमेव ही छूट जायेगें।

अतः यह स्पष्ट है कि रात्रि-भोजन का त्याग करने से हम केवल अहिंसा धर्म का पालन ही नहीं करेंगे अपितु अपना स्वास्थ भी ठीक रख सकेगें।

अहिंसा का लक्षण : संयम

अहिंसा बहुत बड़ी चीज है, केवल हिंसा न करना ही अहिंसा कहना, अहिंसा संकुचित दायरे में बांधना है। इसमें सत्य भी अहिंसा है, ब्रह्मचर्य भी अहिंसा है। अस्तेय भी अहिंसा है परन्तु जब तक व्यक्ति विशेष मर्यादा संयम का पालन नहीं करेगा तब तक सत्य भी नहीं रहेगा, ब्रह्मचर्य भी अस्तित्वविहीन होगा, अस्तेय भी प्रभावविहीन रहेगा। संयम व्यक्ति को केवल दायरों में नहीं बांध सकती वह अहिंसा पथ की एक दिशा है, उस दिशा की ओर प्रत्येक को मुड़ना होता है इसके लिये ये भी जरूरी है अहिंसा के लिए अहिंसा के अस्तित्व के लिए संयम की उपयोगिता या महत्व अपने आप में महत्वपूर्ण है। इसका पालन अनिवार्य है। मर्यादा संयम क्या है इसका विवेचन आवश्यक है अन्यथा मर्यादा संयम की परिभाषा भी संकुचित हो जायेगी। अगर अहिंसा का क्षेत्र अनन्त है, विशाल है तो संयम की राह भी उसी से जुड़ी हुई है।

आज के संदर्भ में यदि हम किसी से पूछे कि संयम क्या है तो वह निश्चय ही कहेगा कि संयम है अपनी इन्द्रियों को वश में रखना। लेकिन यदि हम इसके प्रति विवेकपूर्ण अध्ययन करें तो पता चलेगा कि संयम मात्र बाह्य इन्द्रियों से ही नहीं होता अपितु इसकी अन्य भी विधाए हैं। यह कामना भी दो प्रकार की होती है। जैसे उसके तीन परिणाम होते हैं (1) तृष्णा (2) क्रोध (3) भय। अनुकूल वेदना से तृष्णा उद्भित है। और प्रतिकूल वेदना से क्रोध। भय भी क्रोध के फलस्वरुप होता है। परन्तु मानव स्वभाव से भय पर विजय प्राप्त करना चाहता है। हमारे अधिक जीने की लालसा और उसका आभास होता है तो मन में

भय उत्पन्न होता है। यह वृत्ति न केवल मानव स्वभाव में है अपितु समस्त प्राणियों की आवाज है। यह प्रत्येक के रक्त में मिला हुआ है। जीवन के उच्छेद का प्रश्न आते ही वह जाग उठती है। अत्याचारी लोगों ने इसका भरपूर फायदा उठाया है। उन्होंने लोगों को जीवन का भय दिखाकर अनेक प्रकार से अपना गुलाम बनाया। आज संसार में जितने भी अस्त्र और शस्त्र का निर्माण हो रहा है वह सब मात्र इसलिये लोगों को अथवा राज-नैतिक जीवन में भय दिखाना है। तोप, बन्दूक, गोली आदि इन सब का आधार है—भय। अतः हमें यह सब जानकर एक उचित मार्ग खोजना है जो हमें अभय प्रदान करें। हमें जीवन को एक घिनौने मार्ग से हटाकर एक आदर्श मार्ग पर ले चले और वह मार्ग है अहिंसा का, विवेक का। भय न रहे, अथवा भय समाप्त हो इसके लिये आवश्यक है कि अहिंसा को आचरण में उतारा जाय। अपने विवेक से उसे दूर करने का प्रयत्न किया जाय।

प्रत्येक शक्ति का अच्छे या बुरे रूप में प्रयोग किया जा सकता है। यह बात इन्द्रियों के सम्बन्ध में भी है। इन्द्रियों का चाहो तो सदुपयोग कर लो चाहो तो दुरूपयोग कर लो। यहाँ पर एक दृष्टान्त द्वारा यह समझाया गया है कि किसी प्रकार अपनी इन्द्रियों को अपने वश में रखकर हम किस प्रकार अपने व्यवहार में प्रियता मधुरता का रस घोल सकते हैं। जिससे हमें अनायास ही अमृतरूपी आशीर्वाद प्राप्त होता है।

एक बार दो राजपुत्र अपने गुरू से दीक्षा लेकर सांसारिक लोक व्यवहार में जीवन यापन करने के लिये चल पड़े। गुरू का यह आदेश था कि तुम मेरे दो शिष्य हो। तुम्हें मैंने एक साथ ही शिक्षा दी है और मैं चाहता हूं कि तुम मुझे अपनी विद्या के चातुर्य से बिना पैसे ही लोक जीवन में रहकर, तब अपने पिता से मिलना। ऐसा सुन दोनों राजपुत्र अपने गुरु को प्रणाम कर

चल पड़े। उन दोनों राजपुत्रों का नाम विश्वकीर्ति और निमिर-कीर्ति था।

दोनों राजकुमार चलते-चलते एक गांव के समीप पहुंच गये। वे दिन भर चलकर थके हुये थे। उन्होंने न ही सुवह से अब तक खाना खाया था। दोनों को ही अत्यन्त भूख भी लगी हुई थी। वड़े राजकुमार विश्वकीर्ति ने छोटे भाई निमिर-कीर्ति से कहा हे निमिर कीर्ति देखो, हम इस समय परदेश में हैं और हमें कोई भी नहीं जानता। और न ही हमारे पास कोई पैसा है जिससे कि हम शहर अथवा गांव में जाकर कुछ खाने की व्यवस्था कर सकें सो यह गुरु आदेश है जो हमें शिरोधर है, इसलिये तुम गांव जाओ और कहीं से खाने आदिका प्रबन्ध करो।' ऐसा सुन छोटा राजकुमार अपने वड़े भाई का आदेश सुन गांव की ओर चल पड़ा। शाम का समय होहा था। छोटा राजकुमार जब गांव के अन्दर पहुंचा तो देखा कि सामने ही गाँव का एक भद्र पुरुष आ रहा था। गांव में यदि कोई भी अपरिचित आ जाता है तो जल्दी ही पहचान लिया जाता है क्योंकि गांव में सभी सीमित और केवल जाने पहचाने ही लोग होते हैं। सो उस भद्र पुरुष ने उस अजनवी को देखते ही पूछलिया···'क्यों भाई इस गाँव में नये आये दीखते हो ? कहां जाना है ? यहां किसके यहां ठहरे हो ?'

ऐसा सुन छोटे राजकुमार ने कहा 'जी हाँ, हम इस गांव में अपरिचित हैं और काम की तलाश में हैं, हमारा यहां कोई जानकार नहीं है।'

'कोई वात नहीं, युवक, शक्ल से तो किसी अच्छे वंशज से हो लेकिन कारण वश तुम इस हालात में हो।' छोटा राज-कुमार साथ-साथ चल रहा था। उसने सोचा यह हमारी उपेक्षा कर रहा है। उसने कुछ न कह चुपचाप चलता रहा।

पुनः उसने पूछा—'क्यों युवक जरा यह तो वताओ कि

तुम्हारे पिता जी क्या काम करते हैं।' ऐसा सुनकर छोटे राजकुमार को गुस्सा आ गया। वह बोला—महाशय आप यदि हमारे जलापन की व्यवस्था आदि नहीं कर सकते तो न करें लेकिन इसके पूछने से आपका क्या तात्पर्य है। ऐसा जानकर उस भद्र पुरुष ने उससे कुछ न पूछा।

भद्र पुरुष उस छोटे राजकुमार को अपने घर ले गया और पत्नी से कहकर उसके व उसके बड़े भाई के लिये खाना बनाने के लिये कहा। जब खाना बन गया था तो छोटे राजकुमार ने देखा कि बाहर आंगन में भैंस बंधी हुई है। उसे देखते ही पूछा क्या यह भैंस तुम्हारी है। उसने कहा जी हां। यह हमारी भैंस है।

अच्छा—यह कितना दूध देती है।

यही नो दस सेर।

अच्छा फिर तो बहुत अच्छी है।

हां। सभी परिवार के लोग इसे चाहते हैं। इसी के दूध की वजह से हमारे घर में खीर बनती है, छाछ, दही, मक्खन, घी बनता है। जो हमारे घर-परिवार के लिये व अतिथि में आये हुये लोगों की खातिर आदि में बहुत प्रयोग होता है।

ऐसा सुन छोटे राजकुमार ने पहले कुछ सोचा फिर बोला कि 'महाशय, अगर यह आपकी भैंस मर जाय तो।'

ऐसा प्रश्न सुनकर भद्र पुरुष आश्चर्यचकित रह गया और बोला 'जो विधाता को मंजूर हो, वैसा ही होगा। वैसे ही दिन काट लेंगे। फिर भद्र पुरुष बोला आपके बड़े भाई आपके साथ नहीं आये, इस पर वह बोला—जब कार्य मेरे द्वारा ही सम्पन्न हो जाय तो क्यों मैं उनको कष्ट दूं।

भद्र पुरुष का बालक उधर खेलता हुआ आ गया। उस छोटे राजकुमार ने बालक को देखते ही पूछ लिया—कितने लड़के-लड़कियां हैं, तुम्हारें ?

भगवान की दया से बस एक ही बालक है, घर का चिराग है। कुछ देर इधर-उधर की बात हुई, फिर पुनः न जाने क्या ख्याल उसके दिमाग में आया और पूछ लिया—'महाशय एक बात कहूं, बुरा न मानना। अच्छा, चलो नहीं कहता।'

'नहीं-नहीं आप कहिये, महाशय ने कहा।'

'नहीं-नहीं, वैसे तो कोई बात नहीं,' वैसे ही सोच रहा था अगर तुम्हारा लड़का मर जाय तो फिर बहुत ही बुरा होगा।

ऐसा सुनकर उस भद्र पुरुष से न रहा गया। उसे क्रोध आ आ गया और कहा—युवक अच्छा है कि तुम इसी समय यहां से चले जाओ अन्यथा अच्छा न होगा।' इतना कहकर उनके कपड़े आदि बाहर फेंक दिये और वह वह निराश राजकुमार वापिस अपने बड़े भाई के पास आया और सारी राम कहानी दोहरा दी।

ऐसा सुन बड़े भाई विश्वकीर्ति ने निमिरकीर्ति से कहा कि तुम अपनी जिह्वा पर काबू न रख सके। तुम्हें संयम से काम लेना चाहिये था।

जब छोटा राजकुमार निमरकीर्ति वापिस आ गया तो विश्वकीर्ति स्वयं गांव की ओर चल दिया। गांव के बाहर ही एक बुढ़िया की कुटिया दिखाई दी। वह वृद्धा के पास गया और बोला—'मां। हम दो भाई परदेश से आये हैं और यहां हमारें पास कुछ भी साधन नहीं है। यदि आप हमें कोई उपाय बता सकें ताकि हम अपनी भूख शान्त कर सकें।'

वृद्धा 'मां' का शब्द सुनते ही उसे वात्सल्य उमड़ पड़ा। बोली—'तुम अकेले क्यों आये हो, अपने साथ दूसरे भाई को क्यों नहीं लाये। आओ ? अन्दर झोंपड़ी में आकर बैठो। बाहर क्यों बैठे हो। अन्दर ले जाकर वृद्धा ने उनके लिये तुरन्त चावल बना दिये और कहा—बेटा जब तक इस गांव में रहो, तब तक हमारे घर पर ही खाना खाया करो।

नहीं मां, हम खाना खाना चाहतें हैं, लेकिन काम करके। सो, मां हो सके तो हमें कोई काम बता दो।

ऐसा सुन वृद्धा ने कहा—ठीक है, कल सुवह आना तुम्हें जमींदार से भेंट करवा दूंगी वो तुम दोनों भाईयों को अवश्य काम देगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यदि हम अपनी इन्द्रियों पर संयम न रख सके तो इससे हम कई दुष्परिणाम भुगतने पड़ सकते हैं। और हम इन्हीं इन्द्रियों का दमन कर हम सुमार्ग की ओर अग्रसर होते हैं। जिस प्रकार छोटे राजकुमार ने अपनी जिह्वा पर कोई संयम न रखा तो उसे खाने आदि से वंचित ही नहीं अपितुअपमानित भी होना पड़ा था। और इसके विपरीत बड़े राजकुमार ने अपने सुमधुर भाषण और व्यवहार से उस वृद्धा का मन मोह लिया और खाना ही नहीं बल्कि अपने लिये कार्य भी सुलभ कर लिया।

हमें यह जानना चाहिये कि हमें अपने मन को चलायमान नहीं बनाना है। इसे स्थिर करना है इसके लिये हमें किन-२ क्रियाओं और कामनाओं से बचना है। मन को कहीं लिप्स न करो, न टिकटे दो न घर बनाने दो मनुष्य का मन कहीं न कहीं अवश्य चिपकता हैं। किसी का पुस्तक में चिपकता है तो किसी का खेलों में। इसे बुरे या अशुभ का दुख न होने दो अच्छे या सुभ का शुख न होने दो। इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि अच्छे कार्य में खुश न हो अथवा सुख न माने। बल्कि उस सुख पर लट्टू न होना चाहिये। हर्षित न हो, एकदम मत उठो, तालियां मत पीटो। उसका अभिनन्दन न करें। लड़का पैदा हो अच्छा मालूम होगा, होने दो लेकिन मिठाई न बांटे, न ही बोड़ा आदि बजवायें। शादी हो तो अच्छा लगेगा लेकिन उस पर नाच गाना, बैंड वाद्य आदि क्यों? ऐसा न करना चाहिये। इतना ही कहां है ? इसी तरह बुरा प्राप्त हो तो बुरा लगेगा। हर्ज नहीं, लगने दो पर मन में

संताप न होने दो। वह संताप इतना तीव्र न हो जाये कि बुद्धि को विकारों की आंच लगे। तीव्र विकार बुद्धि पर आघात करते हैं। बुद्धि सही सलामत रहनी चाहिये। मनुष्य की वृति में यदि थोड़ी सी गम्भीरता हो तो उसके लिये कोई कठिन काम नहीं है। यदि मनुष्य की वृत्ति वन्दर जैसी है तो संयम कैसे चलेगा। वन्दर आनन्द में किलकिलाने लगते हैं और दुख में चिल्लाते तो ऐसी वृत्ति न होनी चाहिये। थोड़ी सी गम्भीरता यदि मनुष्य धारण कर ले तो उसके लिये कोई कठिन कार्य नहीं है।

संयम की ओर सुलभ तथा स्पष्ट करने के लिये एक कछुए का उदाहरण देकर भी स्पष्ट किया जा सकता है। इन्द्रिय निग्रह जैसे कछुआ अपनी समस्त इन्द्रियों को अपने में समेट लेता है ठीक उसी प्रकार हमें भी अपनी इन्द्रियों को समेट लेना चाहिये। यूँ तो कछुआ अपने सभी अवययों को फैलाकर चलता है, परन्तु जब कोई खतरे का आभास है तो वह सब अपने अवयवों को अपनी पीठ में छुपा लेता है। इसी तरह जीवन में जब भी आप कोई खतरा महसूस करें तो अपनी इन्द्रियों को समेट लें। जहां उनका सदुपयोग होता है वहां खोल दें, जहां जीवन में कोई खतरा हो वहां उनका सदुपयोग होता है वहां अपनी इन्द्रियों की समस्त क्रियाओं पर अंकुश लगा लें। संयम साधे। जब खतरा आदि हो तो पशु आदि अपना बचाव करते हैं तो क्यों नहीं हमें भी संयम साधन कर लोक व्यवहार में अपना ध्यान बनावें।

जो बात जितनी सरल लगती है वास्तव में इतनी सरल नहीं होती। मुख्यतः यह बात की आदत है, छोटे बच्चे का यदि शुरू से ही यदि बच्चे को अच्छी तरह आदत डालेगे तो बड़ा होकर अच्छाई ही उसका स्वभाव बन जायेगी। बात सिर्फ अभ्यास या आदत की है। पहले तो हम छोटे बच्चों को शिक्षा देकर उनकी रुचि बिगाड़ते हैं फिर बाद में उसे ही सीधा

करना पड़ता है। शुरू में कुशिक्षा देकर उन्हें इन्द्रियों को नख-रीला बना दिया जाता है इसलिये बाद में उन पर संयम अथवा काबू रखना कठिन हो जाता है। यदि शुरू से अच्छी तालिम शिक्षा दी जाये इन्द्रियों पर संयम रखना आसान हो जाता है। ज्ञान देव कहते हैं 'मेरी इन्द्रियों का स्वभाव ही ऐसा बन गया है जो नहीं देखना चाहिये। उधर आंख नहीं उठती। जो सुनने योग्य नहीं उधर मेरे कान सुनते ही नहीं' यह बात कठिन क्यों लगती है चाहिये यदि यह पता लग जाये कि उधर आग है तो उधर हाथ ही क्यों जायेंगे और यदि हाथ को आग में डालना ही है तो कई बार मन को विवश करना पड़ेगा। इसी तरह मन को यहां यह डर हो जाये कि वहाँ कोई खतरा है तो वहां मन जाने को नहीं कहेगा। वास्तव में हमें खतरे का आभास हो जाता है। लेकिन अपनी कुशिक्षा की वजह से हमने परिस्थिति को बिल्कुल ही बदल दिया। वस्तुतः कर्म तो हमें सरल मार्ग बताती है कि किस प्रकार हम इन्द्रियों पर संयम प्राप्त करें। जो एक छोटे से बच्चे के लिये भी आसान है।

इन्द्रियों पर विजय पाने की दो तरह की विधियां पायी गयी हैं। इन्द्रियां संयम व इन्द्रिय निग्रह। इन पर हम दोनों प्रकार की विधियों पर थोड़ा विचार कर ले। इन्द्रिय संयम सारे जीवन का तत्व है। मान लीजिये आपको मिठाई खाने का शौक है। ऐसा नहीं कि मिठाई खाना बुरा है। अथवा अच्छा नहीं है। हां मीठे का मोह बुरा है। अतः ऐसा सोच किसी में आसक्ति नहीं रखनी चाहिये। इसका उद्देश्य है अपने को निक्षित करना, आदत लगाना अथवा दान्त करना। इन्द्रियों को दांत करने के लिये काबू में लाने के लिये, कुछ समय उनका निग्रह करना पड़ता है। जिस प्रकार आपको मिठाई खानी अच्छी लगती है तो आप कुछ समय के लिये मिठाई खाना छोड़ दें और कुछ समय बाद फिर मिठाई खायें लेकिन संभलकर तोलकर। इसे

संयम कहेंगे। इसी तरह एक और है वह मार्ग है, मौन धारण करना। इसी तरह उपवास नैमविक साधन है इन्द्रियों को मध्य रखना संयम है।

यहां जो भेद किया है कि निग्रह प्रसांगिक और संयम नित्य, यह सिर्फ तारतमय से उसके अन्दर ही अन्दर किया है, ऐसा समझना चाहिए कि निग्रह भी संयम की तरह नित्य हो सकता है। हमने देखा है कि उपवास प्रासांगिक है और मिताहार नित्य है परन्तु यहां यह मान लीजिये कि किसी व्यक्ति ने रोज एक समय ही खाने का समय वांध रखा है। यदि ऐसा कोई व्यक्ति आये जो वीच समय में कुछ खाने आदि के लिये कोई कहे तो वह नहीं खायेगा। तो यह निग्रह है। यहाँ यह स्पष्ट है कि वह प्रसांगिक न होकर नित्य होगी। और यही वात मौन के वारे में कही जाती है कि मौन सामान्यता प्रासांगिक होता है। परन्तु वाणी के निग्रह करने को अवसर रोज-रोज आना सर्वथा सम्भव है। किसी ने कुछ कह दिया तो उसका उत्तर देने की वजाय अपने वोलने पर वेग लगा लेना वहुत जरूरी हो जाता है। इसका अर्थ यह हो गया कि निग्रह और संयम का अभ्यास वस्तुतः रोज करना पड़ता है, उसमें अन्तर केवल तारत्यामूलक है। वास्तव में मूलतः दोनों एक ही है। सार यह है कि संयम और निग्रह का सूक्ष्म भेद जानकर उसे भूल जाना ही अच्छा है, परन्तु निग्रह के सम्वन्ध में कुछ और स्पष्टीकरण आवश्यक है। लगता है कहीं निग्रह में वलात्कार का भाव तो नहीं आता। परन्तु इन्द्रिय निग्रह शव्द में ऐसा वलात्कार सूचित नहीं किया गया है।

मनुष्य को सर्व प्रथम अपने मन में यह सोचना चाहिये कि उसका संकल्प ही उसका मार्ग दर्शक है। यह सोचना कि मैं जैसा आचरण करुंगा मेरी इन्द्रियाँ भी वैसा ही कार्य करेगी। इसी अनुभूति से प्राप्त शक्ति के सहारे कामना का वीड़ा निकाल फेंकेंगे। तभी हमें यह समझना चाहिये कि इन्द्रिय निग्रह सफल

हुआ। इन्द्रिय निग्रह का हमारा माप इतना सूक्ष्म है। इन्द्रिय निग्रह के विज्ञान का यह प्रारम्भ है।

इन्द्रियों के आहार का निग्रह-यह प्राथमिक साधना है। इससे साधना समाप्त नहीं हो जाती। वह तो सिर्फ शुरुआत है। बाह्य निग्रह हो जाने से भीतरी रस दौड़ने की तैयारी करने की योग्यता और श्वयता प्राप्त हुई।

दार्शनिक दृष्टि से कहना हो तो सिर्फ इतना ही बताना ही काफी है कि सभी कामनायें छोड़ दो। परन्तु दार्शनिक का ढंग और शिक्षक का ढग अलग-अलग है। शिक्षक विद्यार्थी को एक अज्ञानी समझ कर उसे पूर्ण ज्ञान देगा। शिक्षक विद्यार्थी की भूमिका और अधिकार का ख्याल करके बोलता है। वह यह तो जता कर कहता है कि अंतिम साधना पूर्ण हुये बिना डिप्लोमा नहीं मिलेगा। साथ ही यह भी बताया जाता है कि आज का पाठ क्या है। एक ओर शास्त्रियता को कायम रख कर भी दूसरी ओर दयालु होकर भी ऐसा साधन बताता है जिसमें विद्यार्थी को आशा और धीरज बंधे। दयालु संतों ने तो यहां तक कह दिया है कि जिसने भक्तिपूर्वक एक बार भी भगवान का ध्यान किया वह मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। आशा बढ़ाते-बढ़ाते मुकाम तक पहुंचा देना गुरु दृष्टि की विशेषता है।

वास्तविकता यह है कि जब तक भीतरी रस नष्ट न हो जाये तब तक प्रयत्न जारी रखना चाहिये। जब तक बाहर की इन्द्रियों का समेटना ही है। यदि कोई कहे यह तो ढोंग है सो जिन्हें आत्म नाश करना हो वे ऐसे लोगों और ऐसे विचारों में पड़े। यदि कोई साधक पर इल्जाम लगाता है चाहे वह इस समय साबित ही क्यों न हो जाये क्योंकि साधना पूर्ण होने तक तो केवल उसका प्रयत्न जारी रहेगा तब तक उसकी मनोव्यथा और आचार में फर्क देगा ही। वह यदि पूजा आदि में बैठे तो उसका मन इधर-उधर अवश्य दौड़ेगा तो इसका मतलब यह

है। कि हम प्रार्थना ही न करें क्योंकि प्रार्थना करना भी एक ढोंग है। साधक पर ऐसा अभियोग तभी लगाया जा सकता है जबकि उस पर यह अभियोग सिद्ध हो जो कि वह मात्र लोगों को दिखाने के लिये प्रार्थना का ढोंग रचा रखा है। परन्तु मात्र इतने से साधना पूर्ण नहीं होती रस अर्थात् रुचि निर्मूल होनी चाहिये इतना अर्थ उसमें भरा है। जब तक रुचि अर्थात् रसना खत्म नहीं हो जाती जब तक इन्द्रिय निग्रह पूर्ण नहीं उसमें असमर्थता रहेंगे ही। मनुष्य को चाहिए कि वह स्त्री जाति दूर रहे न केवल स्त्री से अपितु वह मां, बहन और लड़की के विषय में भी सावधान रहें क्योंकि इन्द्रियां बलवान होती हैं और मौका पड़ते ही विद्वान को भी डिगा देती हैं।

कई जैन आचार्यों ने कहा है कि पांच व्रत, पंच समिति का पालन, चार कषायों का त्याग, मन वचन काय का निग्रह ही संयम है। ये पांच व्रत ये हैं :—

१. अहिंसा
२. सत्य
३. अचौर्य
४. ब्रह्मचर्य
५. अपरिग्रह

इन पांच व्रतों और इन पंच समितियों की व पालन करना ही संयम है। क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायों का त्याग संयम है। जो व्यक्ति पंच इन्द्रियों पर शासन करता है वह राजा के समान है। जो इन पंच इन्द्रियों के वशीभूत है वह डाकू के समान है।

संयम धारण करने से ही आत्म कल्याण का मार्ग खुलता है। ठीक उसी प्रकार जब तक गन्ने को पेलू में नहीं दिया जाता तब तक उसका रस नहीं निकल सकता उसी प्रकार संयम को धारण किये बिना मोक्ष का मार्ग नहीं मिल सकता।

हमें ऐसा कोई वचन नहीं बोलना चाहिये जिससे दूसरों को

कोई आघात पहुंचे। पानी सदैव शुद्ध और छान कर पीना चाहिये जो निरोग वनाता है वह शरीर को स्वस्थ रखता है।

संसार में कोई व्यक्ति भी ऐसा नहीं है जिसमें परमात्मा मौजूद न हो, चाहे उसे ब्रह्मकहो, अरहंत कहो, अथवा अल्लाह आत्मा की कोई जाति नहीं। इसलिये आत्मा को शुद्ध करने के लिये जितना हो सके मानव को संयम का पालन करना चाहिये। संयम मोक्ष का द्वार है। यही अहिंसा का मूल है। जव तक मर्यादा संयम है अहिंसा रूप स्पष्ट रहेगा। अहिंसा के लिये जरूरी है संयमी होना, जो संयमी है वो अहिंसामय है जो संयमी नहीं है वो हिंसामय है। इसके अतिरिक्त अहिंसा के लिए निम्न वातों का पालन करना अत्यन्त आवश्यक है।

आओ हे सूरीश्वर !

मनुज को फिर भगवान बनाने

वन्दन स्वर में गाते

रहते मेरे दिल के गाने !

श्री सजीतमल नाहटा

८-ग्लारो प्लेस, कलकत्ता-१२

शत् शत् नमन्
आचार्य श्री जिन चन्द्र
सूरी जी
महाराज

फतेह चन्द जी सकलेचा
7/2-ए आनन्द नियोगी लेन कलकत्ता-३
फोन-553438

अहिंसा के महादूत महावीर परम्परा के गौरव सपूत !!

पुंजी भूत शत् शत् नमन् भारत धरती के गौरव सपूत !!

महाराज श्री जिन चन्द्र सूरी जी

प्रकाश ट्रेडिंग कम्पनी

१२-इन्डिया एक्सचैन्ज प्लेस कलकत्ता-७०००१

यह दास चरण अनुरागी है

शुभ हार्दिक श्रद्धा जागी है।

श्रद्धा वन्दन स्वीकार करें,

सूरी संस्कृति का शृंगार करें।

अन्धकार में भटक रहा जग

इसे मार्ग दिखलाओ

हे गच्छाधि पति देव ! भटके जग हित

ज्योतिर्मय बन जाओ !

ए० कोठारी एण्ड संस

२, इन्डिया एक्सचेंज प्लेस कलकत्ता-७०००१

हे अभयंकर ! भीत मनुजता;

के सम्बल आधार बनो !

हे सूरीश्वर पीडित प्राणीहित;

वरदान देव साकार करो !!

श्री हनुमान दास हरी शंकर
१२, नूरमल लोहिया लेन, Ist फ्लोर[कलकत्ता-७
फोन : 323255

हे सूरी संस्कृति के दिव्य रत्न
तुम अवनीतल पर चमको;
जैन जगत के दिव्य भाल पर
चन्द्र तुल्य नित्य दमको !

श्री जी. एल. दुधोरिया एन्ड सन्स
५-क्लाइव रोड, कलकत्ता-७

इस अशांत जग में अब तेरा
मार्ग देखती जनता सारी
मार्ग दिखाओ हे सूरीश्वर
यही प्रार्थना आज हमारी

श्री भीखम चन्द चुला राम
३५, अरमेनियन स्ट्रीट, कलकत्ता-७०००१
फोन : 335680.

क्षमा के गौरव : दया धर्म के सुमधुर आगार
कलकत्ता नगरी धन्य हुई
करें आपका पावन सत्कार !!!

शुभ वेला में मेरे मन के;

दो भाव-पुष्प स्वीकार करें।

सूरीश्वर मन वन्दन;

कर स्वीकृत जग उद्धार करें।

मेसर्स : जे० कोठारी एण्ड कं०,
१२, इन्डिया एक्सचेन्ज प्लेस,
कलकत्ता-700001

सुना है हमने तेरे दर से
कोई खाली नहीं जाता
यही विश्वास है सूरीश्वर
तेरे चरणों में है ले आया

हे-जग के संरक्षक ईश्वर सूरीश्वर;

सत्य, अहिंसा के अवतार।

मानवता की नाव डूबती

करो देव! उसका उद्धार!!

श्री अरूण सिंह श्री मल

12, इण्डिया एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता–700001

युग-युग तक ऋणी रहेगा

आपके सम्मुख यह संसार

इन शब्दों में आचार्य आपको

मेरे वन्दन वारम्बार ॥:

श्री गौरीशंकर बाठिया

११४–जतिन्दर मोहन एवन्यू, कलकत्ता

कार्तिक पूर्णिमा के
महान पावन अवसर पर
कलकत्ते में निकलने वाले

भगवान धर्म नाथ

के जुलूस में अधिक से
अधिक संख्या में पधार कर
रथयात्रा की शोभा बढ़ायें।

हे पूज्य श्री ! प्रार्थना यह मेरी

यह सृष्टि बने सुन्दर ललाम्

इन भावों के साथ देव .

स्वीकार करो मेरे प्रणाम् !